

ISSN 2456-8384

قَالَ اللَّهُ تَبَارَكَ وَتَعَالَى قَدْ جَاءَكُمْ مِنَ اللَّهِ نُورٌ وَكِتَابٌ مُبِينٌ  
سُورَةُ مَائِدَةِ آيَةُ ١٥٦

ستمبر و اکتوبر ۲۰۱۷ء محرم نمبر ۱۳۳۹ھ

ماہنامہ

# شعاع کلمہ



نور ہدایت فاؤنڈیشن، حسینہ غفران مااب، چوک، لکھنؤ-۳



ISSN 2456-8384

R.N.I NO.UPBIL/2004/13526

Postal Regd. No. SSP/LW/NP-75/2017-19 Dispatch Date: 2 & 6 of Every Month

Annual Rs. 200/-

संयुक्तांक

Per Copy- Rs.25/-

Joint Issue Price Rs.50/-

## शुआ-ए-अमल

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका लखनऊ

Joint Issue September - October 2017



ڈاکٹر شام غریباں عمدۃ العلماء آیۃ اللہ سید کلب حسین نقوی اختر

ولادت: ۶ رجب المرجب المعظم ۱۳۱۱ھ مطابق ۱۳ فروری ۱۸۹۴ء

وفات: ۱۷ جمادی الاول ۱۳۸۳ھ مطابق ۶ اکتوبر ۱۹۶۳ء (یکشنبہ)

## SHUA-E-AMAL

Lucknow



## NOOR-E-HIDAYAT FOUNDATION

Imambara Ghufraan Maab, Chowk, Lucknow-3 (U.P.) INDIA, Ph.:0522-2252230



ISSN 2456-8384

बिस्मिल्ली दआला

Per Copy 40/-  
Annual 200/-

मुहर्रम नम्बर 1439 हि०

वर्ष  
14

अंक  
3-4

न्यास संस्थापन

15 जमादिलउला 1424 हि० / 16 जुलाई 2003 ई०

पत्रिका विमोचन

15 जमादिलउला 1425 हि० / जुलाई 2004 ई०

पर्यवेक्षक:

मु० र० आबिद, गोलागंज लखनऊ

सलाहकार समिति

- प्रोफेसर अल्लामा अली मुहम्मद नकवी, अलीगढ़
- डॉ० महदी ख्वाजा पीरी, ईरान
- मौलाना हसन ज़फ़र नकवी, कराची
- कैप्टन सिकन्दर रिज़वी, लखनऊ
- प्रोफेसर हुसैन कमालुद्दीन अकबर, इलाहाबाद
- डॉ० अरशद अली जाफरी, लखनऊ
- शायरे अहलेबैत रज़ा सिरसिवी, सिरसी
- सै० सैफ़ तकी नकवी, दिल्ली
- मुहम्मद आलिम, हुसैनाबाद, लखनऊ

नूरे हिदायत फाउण्डेशन के

इस्लामी, ज्ञान व शोध

हिन्दी, उर्दू मासिक पत्रिका

सितम्बर व अक्टूबर— 2017 ₹० (संयुक्तांक)

शुआ-ए-अमल

“लखनऊ”

संरक्षक

प्रोफेसर काएदे मिल्लत मौलाना सै. कल्बे जवाद नकवी साहब

माननीय नवाब रज़ा साहब, भोपाल

माननीय सै० अहमद अब्बास नकवी साहब, मुम्बई

सम्पादक

सै. मुस्तफ़ा हुसैन नकवी ‘असीफ़’ जायसी

उप-सम्पादक

कायम महदी नकवी ‘तज़हीब’ नगरौरी

आसिफ़ अब्बास नौगांवी

मिलने का पता

नूरे हिदायत फाउण्डेशन

इमामबाड़ा हज़रत गुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक, लखनऊ - 3

Phone No: 0522-2252230

Mobile No: 08736009814 — 09335996808

प्रकाशक मुद्रक: सैय्यद मुस्तफ़ा हुसैन नकवी द्वारा स्वामी एस कल्बे जवाद नकवी के लिए निज़ामी प्रेस विकटोरिया स्ट्रीट अपोजिट हसनैन मार्केट, चौक, लखनऊ (उ० प्र०) से मुद्रित तथा नूरे हिदायत फाउण्डेशन, इमामबाड़ा गुफ़रानमआब, मौलाना कल्बे हुसैन रोड, चौक लखनऊ (उ० प्र०) से प्रकाशित।  
सम्पादक: सैय्यद मुस्तफ़ा हुसैन नकवी

सितम्बर व अक्टूबर— 2017

मासिक “शुआ-ए-अमल” लखनऊ

मुहर्रम नम्बर 1439 हि०

3

## सम्पादन समिति

- ⇒ डॉ० अमानत हुसैन नकवी
- ⇒ हैदर अब्बास नकवी, इलाहाबाद
- ⇒ अमील शम्सी, लखनऊ
- ⇒ वासिफ अहमद नकवी 'समीर'
- ⇒ महदी रज़ा
- ⇒ शाहिद अली आजमी
- ⇒ जुलफ़ेकार हैदर आजमी
- ⇒ अलहाज मिर्ज़ा हुमायूँ क़दर
- ⇒ डॉ० आरिफ़ अब्बास
- ⇒ रेहान आलम, लखनऊ
- ⇒ सलमान हुसैन
- ⇒ बिनते ज़हरा 'नदल हिन्दी'
- ⇒ अलहाज फ़रीद महदी रिज़वी

- ज़फ़र हुसैन रिज़वी ब्यूरोचीफ़ मुम्बई
- इरफ़ान हैदर, ब्यूरोचीफ़ मध्यप्रदेश
- कैफ़ तकी नकवी, ब्यूरोचीफ़ देहली

R.N.I. No.  
UPBIL/2004/13526



Postal Regd. No.  
SSP/LW/NP-75/2017-2019



### WEBSITE:

www.noorehidayatfoundation.org  
www.naqeeblucknow.com

### E\_mail:

noorehidayat@yahoo.com  
noorehidayat@gmail.com  
shuaeamallucknow@gmail.com

## वार्षिक अंशदान

- 1- एक साल के लिए 200/-
- 2- पांच साल के लिए 800/-
- 3- लाईफ़ मिम्बरशिप 5000/-

# विषय सूची

सितम्बर व अक्टूबर 2017 ई० (संयुक्तांक)

ज़िलहिज्जा 1438 हि० व मुहर्रम 1439 हि० (मुहर्रम नं०)

| नं० | लेख व लेखक                                                                        | पृष्ठ |
|-----|-----------------------------------------------------------------------------------|-------|
| 1   | एजाज़ नुमा ग़म<br>अल्लामा हिन्दी आयतुल्लाह सै० अहमद नकवी                          | 5     |
| 2   | मुहर्रम<br>आयतुल्लाहिल उज़मा सै० अली नकी नकवी                                     | 7     |
| 3   | मजलिसे शामे ग़रीबाँ<br>सफ़वतुल उलमा मौलाना सै० कल्बे आबिद नकवी                    | 9     |
| 4   | हुसैन के वीर रूप में दर्शन<br>मिर्ज़ा सज्जाद हुसैन, लखनऊ                          | 16    |
| 5   | मुहर्रम क्यों मनाया जाता है?<br>श्रीमती कनीज़ क़मर अब्बास, उन्नाव                 | 20    |
| 6   | बलिदान<br>श्रीमती नारवन आरा रुदौलवी                                               | 24    |
| 7   | मताए रबाब<br>फख़रे कौम मौलवी सै० कल्बे अब्बास नकवी                                | 26    |
| 8   | अज़ादारी व ताज़ियादारी<br>गुलाम हुसैन ज़ैदी                                       | 28    |
| 9   | क़तआत<br>शैदाए अहलेबैत विश्वनाथ प्रसाद माथुर लखनवी                                | 31    |
| 10  | मजालिसे अज़ा और फ़राएज़े आज़ादारी<br>ख़तीबे अकबर मौलाना औलाद हुसैन शाएर इज्तेहादी | 32    |
| 11  | मिल्लते नाकाम<br>शाएरे अहलेबैत अल्लामा नज़्म आफ़न्दी                              | 36    |
| 12  | शहीदे इन्सानियत (किस्त-7)<br>आयतुल्लाहिल उज़मा सै० अली नकी नकवी                   | 37    |
| 13  | मुख्य समाचार<br>इदारा                                                             | 41    |

## चमत्कारी शोक

हकीमुल उम्मत अल्लामए हिन्दी आयतुल्लाह सय्यद अहमद नक्वी

हम्म व ग़म (शोक) फ़ितरी (प्रकृतिक) है। कोई जी रुह (जानदार) इस जज़बे से मुस्तस्ना (अलग) नहीं है। इसी तरह से खुशी व मसरत का जज़बा भी फ़ितरी है लेकिन इल्मुन नफ़्स (Phycology) में जज़बात के मुताल्लिक यह उसूल मुसल्लमा है कि खुशी के जज़बात बाकी रहने की कोशिश करते हैं इस लिए कि वह ममदे हयात है और तकालीफ़ के जज़बात अपने को कम करने की कोशिश में रहते हैं क्योंकि बकाए हयात के लिए मुज़िर है इस लिए इसका जल्द फ़ना (ख़त्म) हो जाना ज़रूरी है। दूसरा क़ानून यह है कि जुमला जज़बात तकरार और बार-बार दोहराने से यकसॉ कुव्वत नहीं रखते बल्कि मुतवातिर कमी होती रहती है। यहाँ तक कि यह भी फ़ना हो जाते हैं। जिसकी यह वजह है कि महसूसात में हर एहसास के बाद निज़ामे नरदी (जिसका मरकज़ दिमाग़ है) किसी किस्म की तहरीक न हो मुमकिन नहीं और यह नरदी जानदार होती है बार-बार की हरकत से थक जाती है और तकरार से ज़ईफ़ होते-होते फ़ना हो जाती है और अगर तहरीक में काफ़ी फ़स्ल हो तो ज़ोफ़ नहीं महसूस होता और हर बार कुव्वत के साथ नरदीन मुतहर्रिक होती है लेकिन फिर भी असबाबे ख़ारजी एक को दूसरे से फ़र्क़ दिलाते रहते हैं। तीसरा इल्मुन नफ़्स का क़ानून यह है कि काफ़ी तसव्वुर उस वाकिये का हो। चौथा क़ानून यह है कि बका व दवाम किसी जज़बे का मुहाल है जबकि किसी सख़्त जज़बे का तसादुम हो जाए। मज़क़ूरा क़वानीन में से एक क़ानून भी मौजूद होगा तो जज़बए ग़म फ़ना हो जाएगा। इन अटल क़वानीने इल्मुन नफ़्स की रोशनी में इस एजाज़ नुमा ग़म का मुतालिआ

करो जिसको ग़मे हुसैन कहते हैं जो क़वानीने इल्मुन नफ़्स की पाबंदी से आज़ाद है।

1—हुसैनी ग़िरोह ग़मे हुसैन को मुफ़ीदे हयात समझता है और हर हम्म व ग़म व मुसीबत को ग़मे हुसैन मना कर दूर करता है। वह किसी मज़हब का भी हो, ईसाई हो या मूसाई या अहले हुनूद सब ही इस ग़म को उसी नज़र से मनाते हैं कि वह मुईने हयात है जिसकी सैंकड़ों शहादतें मौजूद हैं। डाक्टर ज़ीमर अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि “हुसैन के नाम से हाजतें तलब करते हैं और वह पूरी होती हैं। इस लिए इस्लाम की तरक्की का सैलाब बा वुजूद जमाअते मसीहिया की इंतेहाई कोशिश के चीन में बढ़ता जाता है। चूंकि ग़मे हुसैन ममदे हयात बन गया है। इस लिए वह इस चौदहवीं सदी तक रोज़ बरोज़ तरक्की पज़ीर है और बाकी रहने वाला है जो ख़िलाफ़े फ़ितरत है और मोज़िज़नुमा ग़म (चमत्कारी शोक) है। 2— ग़मे हुसैन न तो तकरार से ज़ईफ़ (कमज़ोर) होता है न निज़ामे नरदी में कमज़ोरी आती है। इसकी तकरार की एजाज़ नुमा हालत यह है कि वह तकरार से क़वी (मज़बूत) होता है और बार-बार दोहराने से इसमें ज़ियादती होती है ग़ुर इसका यह है कि हकीमे हिकमते इलाही ने हर हम्म व ग़म का जो हर इंसान की इंसानी कमज़ोरी का नतीजा है रुख़ ग़मे हुसैन की तरफ़ पलट दिया है। इरशाद है “अगर किसी शय पर रोना आता हो जान व माल व इज़्ज़त व जाह मनसब व सेहत के फुक़दान से तो हुसैन पर रो लो। इस तदबीर से हर ग़म व मुसीबत में शियों की ग़मे हुसैन शामिल है जिससे वह हमेशा ताज़ा रहता है। इसी तरह से इरशाद है।

“हर दुनियावी चीज़ के इख़तेलाफ़ पर रोना पीटना मकरूह है बजुज़ ग़मे हुसैन के”। और इतलाफ़े नेमाते दुनिया (दुनियावी नेमतों के न होने) पर रोना फ़ितरी है लिहाज़ा इस फ़ितरी ग़म व हम में ग़मे हुसैन शरीक करके वह कराहत जो बे सबरी बे तहम्मुली बे हिम्मती व कमज़ोरिये नफ़स की वजह से बशरियत को आरिज़ होती रहती है ग़मे हुसैन मनाकर फ़ितरी ऐब को इंसान के छुपा दिया है। इसके बाद यही क़ानूनने फ़ितरत ग़मे हुसैन मेंतकरार से मज़ाहिम हो तो इरशाद है “जो हुसैन(अ.) पर रोए या रूलाए या रोने वाले की सूरत बनाए उस पर जन्नत वाजिब है।” ग़मे हुसैन मनाने के वास्ते रोना और रोने वाले की सूरत बनाना यह दो सूरतें और पेश करदी हैं लिहाज़ा निज़ामे नरदी के आम क़ानून से ग़मे हुसैन को आज़ाद कर दिया है।

3— काफ़ी तसव्वुर का होना शर्त है ग़मे हुसैन को इस नफ़सियाती क़ानून से इस तरह से आज़ाद करा लिया है कि सोहबते ग़मे हुसैनी में क़दम रखते ही तसव्वुरे ग़म नामुमकिन था लिहाज़ा “तबाकी” और रोने वाले की सूरत बना लेने से अदमे तसव्वुर हारिज व मान—ए—ग़म नहीं हो सकता।

4—किसी सख़्त जज़बे का तसादुम ग़मे हुसैन से न कभी मज़ाहिम हुआ है न मज़ाहिम होगा। जज़बए अदावत व बुग़ज़ और दुश्मानों की हुकूमतों की मज़ाहिमत व तसादुम ने कब इस ग़मे हुसैन के जज़बे को मिटाया या कमज़ोर किया। खुद यज़ीद इस ग़म को अपनी सलतनत के ज़वाल का सबब समझे हुए था और वाक़िया भी यही है कि यह हलाकत आफ़रीन ग़म यज़ीदी तख़्त व ताज को उलट कर रहा। जिसको यज़ीद ने खूब समझ लिया था। और इबतेदा ही में इस ग़म को मिटा देने की पुरज़ोर कोशिश की। सिर्फ़ एक वाक़िया दरबारे यज़ीद का सुन लो और ऐजाज़ नुमा ग़मे हुसैन के जोर व कुव्वत का मुशाहिदा करो। दरबारे यज़ीद में हज़रत ज़ैनब(अ.) की

तक़रीर और इमाम ज़ैनुल आबेदीन(अ.) के खुतबे से शामी सोते—सोते चौंक पड़े और यज़ीद से कहने लगे तूने हम को धोके में रखों। यही कहता रहा कि एक ख़ारजी ने ख़ुरूज किया जो क़त्ल किया गया। हम न जानते थे कि तूने औलादे रसूल को क़त्ल किया। यह कहकर दरबारे यज़ीद से निकल गए। और जा बजा अज़ादारी शुरू कर दी। यज़ीद ने ख़बर पाकर तमाम मसाजिद में कुरआने मजीद रखवा दिए ताकि कुरआने मजीद की तिलावत में लोग मशगूल हों और ज़िकरे हुसैन(अ.) को ममनूअ करार दिया। शामियों ने एक न सुनी अज़ादारी में मशगूल रहे। मजबूर यज़ीद मिमबर पर गया और शामियों को जमा कर के कहने लगा तुमको यह ख़याल है कि मैंने हुसैन को क़त्ल किया हालांकि उनका क़ातिल इबने मरजाना है फिर इबने रबी से पूछा तूने इमाम हुसैन को क़त्ल किया उसने कहा खुदा लानत करे, मसाहिर बिन वहना ने उनको क़त्ल किया मैं क़ातिल नहीं। मसाहिर से पूछा: उसने कहा खुदा लानत करे सनान बिन अनस नजफ़ी ने क़त्ल किया। सनान से दरियाफ़्त किया। उसने इनकार किया और कहा खुदा लानत करे शिम्र बिन ज़िल जौशन ने क़त्ल किया। उससे दरियाफ़्त किया तो कहा खुदा लानत करे कैस बिन रबी ने क़त्ल किया। जब कैस से दरियाफ़्त किया उसने कहा ऐ अमीर अगर तू अमान का वादा करे तो मैं सच—सच बता दूँ। यज़ीद ने अमान दी। कैस ने कहा हुसैन और उनके अनुसार को उसने क़त्ल किया जिसने फौजी झंडे बनाए, माले कसीर शहरों—शहरों तकसीम किया, फौजों पर फ़ैज़ें रवाना कीं।

यज़ीद—यह सब किसने किया?

कैस—क़सम बख़ुदा यह सब तुमने किया?

यज़ीद यह सुनकर ग़ज़बनाक होकर उठ गया और सरे इमामे हुसैन (अ.) रूमाल से ढक कर पास

**(बक़िया पेज नं० 15.....)**

## मुहर्रम

आयतुल्लाहिल उज्मा सैय्यदुल उलमा मौलाना सै० अली नकी नक्वी

उफ़ कितना दिलदोज़, कितना जिगर फ़िगार और कितना ग़म अंगेज़ नाम। आह! क्या है कि इस नाम को सुनकर दिल पिघलता और आँखें डबडबाई आती हैं? क्या है कि आँसू खुद बख़ुद उछल पड़ते और दिल उमड़ आता है।

ये आख़िर इस नाम की तासीर है, इसकी ख़ासियत है, या इस नाम की तहत में जो मआनी हैं उनका असर?

नहीं ये कुछ नहीं। ये तो एक महीने का नाम है जिससे दौरे क़मरी के साल की इब्तिदा होती है। मगर इस महीने का भी खास्सा ही है कि उधर इसका चाँद फ़लक पर दिखाई दिया, इधर हर तरफ़ नौहा व बुका, शोर व शेवन की आवाज़ें आने लगीं। घरों में मातमी सफ़ें बिछ गईं और अच्छे-अच्छे रंग बिरंगे ज़र्क़ बर्क़ कपड़ों के बजाए सियाह कपड़े ज़ेबे जिस्म नज़र आने लगे। इस चाँद को देखते ही दिलों पर रंजो ग़म का हुज़ूम हो जाता है। हंसने बोलने को दिल नहीं चाहता और हर वक़्त रोने और अशक़ बहाने या चुप ख़ामोश रहने को दिल चाहता है।

मगर महीने भी तो आख़िर दौरे ज़माना के मुख़्तलिफ़ अजज़ा हैं और इस हैसियत से मसावी हैसियत रखते हैं। उनमें भी खुद ये ख़ासियत छिपी हुई नहीं है कि कोई उनमें से ख़ूब दिलों को खुश करे और लबों पर हंसी लाये और कोई रंजो ग़म का बाइस हो और आंखों से आंसू जारी करे।

लेकिन बेशक़ महीनों में कुछ तारीख़ी वाक़िये हो जाया करते हैं। जो उनमें कोई मख़सूस असर मुज़मर कर देते हैं। वह तारीख़ी वाक़ेआत की याद होती है जो उन महीनों में ताज़ह हो कर वही असर दिखलाती है जो खुद

उनके वकूअ में मुज़मर था।

अब ये उस वाक़िए की अज़मत पर मौकूफ़ और अहमियत पर मुनहसिर है, वह जितना ही अज़ीम होगा उतना अरसे तक उसका असर काएम रहेगा। और ज़्यादा शिद्दत के साथ रूनुमा होगा।

जवान बेटे के ग़म में बैठने वाली माँ कुछ दिनों रोज़ाना उसकी याद में रोती और फिर हर हफ़्ता उस दिन के आने पर गिरया करती और और उसके बाद हर साल उस तारीख़ के आने पर अफ़सुरदह होती है, वह उसकी मजलिस व फ़ातेहा ख़्वानी करती है और कभी चन्द आँसू बहा लेती है लेकिन थोड़ा तवील अरसा गुज़रने के बाद इस अफ़सर्दगी का असर बहुत कम हो जाता है। तारीख़ के आने पर अगर उसकी याद का सामान कुछ होता भी है तो वह सिर्फ़ रसमी हैसियत में महदूद रहता है लेकिन दिल पर रंज व ग़म का काएम होने वाला असर उस सूरत से अब दिल ग़मगीन नहीं बनाता जिस सूरत से पहले।

ये कुल्लिया अगर ठीक हैं और ज़रूर ठीक है तो बेशक़ इस मुहर्रम में होने वाला वाक़ेआ ज़रूर कोई ऐसा अज़ीम वाक़ेआ होगा जिसकी मिसाल दुनिया के हवादिस में कमयाब नहीं बल्कि मादूम है।

वह वाक़ेआ अपनी अहमियत, कुदरत और अज़मत में कुछ ऐसा है कि उसकी याद महीना दो महीना, साल दो साल नहीं बल्कि एक हज़ार तीन सौ बरस के क़रीब होने के बावजूद ज़िन्दा है और अहले दर्द के दिल को उसी तरह बरमाती है कि मालूम होता है वह वाक़ेआ अभी रूनुमा हुआ है।

एक खालियुज्जेहन आदमी इराक़ जाय, ईरान जाय, शाम जाय, यमन की सैर करे, बहरैन की सियाहत करे, जावह में जाकर क़याम करे, कश्मीर, तिब्बत और चीन का दौरा करे और फिर हिन्दुस्तान के हर हर सुबे, हर शहर का जायज़ा ले और इत्तेफ़ाक़ से हर जगह मुहर्रम का ज़माना पड़े। वह देखेगा कि दुनिया का तूल व अर्ज़ उस ग़म अंगेज़ ज़माने में मरकज़े रंज व हसरत बन जाता है। और जहाँ जहाँ पैग़म्बरे इस्लाम के अकीदत मन्द आबाद हैं वह उस ग़म अंगेज़ ज़माने में किसी वाक़िए की याद को ताज़ा ज़रूर करते हैं। ये कौनसा ग़म अंगेज़ सानेहा है और वह क़यामत खेज़ हादेसा कौनसा था जिसने सफ़ह—ए—दुनिया पर अपना न मिटने वाला नक्श छोड़ दिया है।

सुनो और अगर दिल रखते हो तो दिल को संभाल कर सुनो।

पैग़म्बरे इस्लाम का प्यारा नवासा, अली व फ़ात्मा स0 की आँखों का तारा, ख़ल्क़ का इमाम और दुनिया—ए—इस्लाम का रूहानी पेशवा, हक़ का सबसे बड़ा फ़िदाई और मज़हब का सब से बड़ा मुहाफ़िज़ था जिसने अपने नाना के दीन, खुदा के सच्चे मज़हब के लिए करबला के मैदान में इन्तेहाई सन्न व इस्तेक़लाल हैरत अंगेज़ सुकून व इतमिनान, तअज्जुब खेज़ तरतीब व इन्तेज़ाम के साथ वह अज़ीमुशान कुरबानी पेश की जिस की नज़ीर न उसके क़ब्ल हुई थी और न उसके बाद।

रसूले खुदा के मक्के से मदीने की तरफ़ हिजरत करने को इकसठवाँ साल था जब दसवीं तारीख़ मुहर्रम को हुसैन अ0, बेकस मज़लूम इमाम तीस हज़ार कुफ़ी फ़ौज के समन्दर में घिर गया था। तलवारों नेज़ों की चमकती बिजलियाँ, दुहले जंग की फ़लक शिगाफ़ गरज और ढालों के घटा टोप बादल में आसमाने नुबूत के सितारे अपनी आख़री रौशनी पहुँचा रहे थे।

मोएज़ा ओ नसीहत में कोताही न थी और इतमामे हुज्जत की मंज़िलें तय हो रही थीं मगर घटा, वह अज़ीम घटा कि हाथ को हाथ सुझाई न दे। ढालों की घटायें, काले निशानों और उनके फर हरों की घटाएँ, खुद फ़ौज की कसरत की समुन्दर की तरह बढ़ती हुई घटायें बल्कि गुमराही और ज़लालत की घटा, जेहालत व कोर चशमी की घटा। इसमें हिदायत की तेज़ तरीन शुआएँ बे नतीजा और मोएज़ा व नसीहत की रौशन तरीन जौफ़िशानियाँ बिल्कुल बे असर साबित होती थीं। आख़िर इतमामे हुज्जत के तमाम दर्जे ख़त्म हो गये और मोएज़ा व नसीहत के सब ज़राए तमाम हो गये।

पामाली, अहक़ामे मज़हब की पामाली, दीने खुदा की पामाली और शआइरे इस्लाम की पामाली उसको हुसैन अ0 ग़वारा न कर सकते थे।

यज़ीद की अख़्लाक़ सोज़, मज़हब शिकन, कुफ़्र खेज़ और बातिल परवर हुकूमत में इस्लामी ख़िलाफ़त अगर बिल्कुल तस्लीम हो जाती तो उम्मतए इस्लामिया एक दम शरीअत से किनारा कश, मज़हब से अलाहिदा और अहक़ामे मज़हब से बे परवाह हो जाती।

उमवी सलतनत का क़याम ओ बका मज़हब की ईट से ईट बजा देता और अहक़ामे शरीअत को कमज़ोर, बे वुक्अत, बेवक़ार नहीं बल्कि बिल्कुल पैवन्दे ख़ाक़ और मलिया मेट कर देता। हुसैन अपनी महदूद दुनियावी ज़िन्दगी को इस मज़हबी मौत और सच्ची फ़ना के साथ कभी ग़वारा न कर सकते थे।

उन्होंने मुसलमानों की नजात का बेड़ा उठाया। यानी उनके लिए नजाते आख़िरी का रास्ता साफ़ करने, हक़ व सिदाक़त की तालीम देने और अहक़ामे मज़हब से सही तौर पर रूशनास करने के लिए अपनी और अपने अज़ीज़ों

**(बक़िया पेज नं0 15.....)**



# मजलिसे शामे ग़रीबों

10

ज़ाकिर : सफ़वतुल उलमा मौलाना सैय्यद कल्बे आबिद नक़वी रहमत मआब

बिस्मिल्लाहिर्रहमा निर्रहीम। अलहमदो  
लिल्लाहे रब्बिल आलमीन। अर्रहमानिर्रहीम।  
मालिके यौमिददीन। (सलवात)

कुरआने मजीद में दो बातों पर ख़ास जोर दिया गया है एक सब्र और एक शुक्र। सब्र के लिये भी बहुत सी आयतें हैं और शुक्र के लिये भी बहोत सी आयतें हैं। सब्र के लिये कभी इरशाद है इस्तईनू बिस्सबरे वस्सलात देखो अपने उमूर में मदद तलब करो सब्र से और नमाज़ से कभी रेसालत मआब (स0) से इरशाद हुआ फ़सबिर कमा सबरा ऊलुल अज़्मे मिनरुसुल ऐ रसूल! आप भी उसी तरह सब्र किजिये जैसे गुज़िश्ता पैग़ामबरों में उलुलअम्र पैग़म्बर सब्र करते रहे हैं। कभी इरशाद हुआ कि देखो सब्र कि जज़ा की कोई हद नहीं है। मगर सवाल ये है कि सब्र से क्या मुराद है? क्या सब्र के मआनी हैं कि जुल्म के मुकाबले में फ़रयाद न करना? क्या सब्र के मआनी हैं ऐहसासे शिकस्त पैदा हो जाना? अगर यही मआनी सब्र के हैं तो फिर आख़िर जनाबे मूसा (अ0) ने फिरऔन के मुकाबले में उसी सब्र को अख़तियार क्यों न किया। फिर ये क्यों इरशाद हो रहा है कि वो काअय्यिन मिन्नबीय्यिन कातला मअहू रब्बेऊना कसीरुन फ़मा व हनू लेमा असाबहुम फ़ी सबीलिल्लाहे व—मा ज़ओफू वमस तकानू वल्लाहु युहिबुस्साबेरीन। बहुत से ऐसे अंबिया हैं जिनके हमराह अल्लाह वालों ने जंग की लेकिन उस जंग में उनमें ज़रा सी भी कमज़ोरी न आई अल्लाह की राह में मसायब बर्दाशत किये मगर ज़रा भी उनके क़दमों में लगज़िश न हुई। फिर मुसलमानों को क्यों ये हुक्म दिया जा रहा है कि वला तहेनू वला

तहज़नू वअनतुमु आलौना इनकुनतुम मोमनीन।

देखो न तुम रंजीदा हो न तुम में कमज़ोरी पैदा हो। तुम्हीं फ़ातेह करार पाओगे, तुम्हीं सरबलन्द करार पाओगे अगर तुम सच्चे मआनों में मोमिन हो। तो फिर आख़िर ये मुकाबले कि दावत क्यों दी जा रही है ये कुफ़्र से टकराने ये जुल्म से टकराने की दावतें क्यों दी जा रही हैं।

हकीकत ये है कि सब्र के मआनी जुल्म के सामने सर झुका देना नहीं है। बल्कि सब्र मौका और महल के लेहाज़ से बदलता जाता है। कहीं यही सब्र शोला है कहीं शबनम। कभी यही सब्र सहर की ठण्डी हवा है कभी आँधी। कभी यही सब्र गुलू की नमी है कभी बिजली की कड़क। कभी इसी सब्र का मतलब होता है शमशीरे क़ज़ा के सामने मुसकुरा देना और कभी यही सब्र तलवार बन जाता है जुल्म की गर्दन पर। जैसा मौका वैसा सब्र। अगर सब्र सिर्फ़ सर झुकाने का नाम होता तो कुफ़्र का ला मजहबियत का ऐतेराज़ दुरुस्त था कि सब्र हकीकत में अपने ज़माने के मुतकब्बिरीन अपने ज़माने के दौलत मंदों और ज़ालिमों की तलवार थी जो उन्होंने मज़हबी ठेकेदारों के ज़रीऐ से मज़लूमों की गर्दन पर लटका रखी थी। वो चाहते थे कि सब्र के ज़रीऐ से लोगों को फ़रयाद से रोक दिया जाये। लेकिन हकीकत सब्र है मुकाबला करना, मुकावमत करना इस्तेक़लाल के साथ पाबंदी के साथ डटे रहना। हादेसाते ज़माना हों तो उसमें सब्र है बर्दाशत कर लेना। इफ़ेरादी तौर पर किसी से कोई ज़यादती हो जाये आपके ऊपर तो आपका मुआफ़ कर देना सब्र है। ताकि इंतेक़ाम दर इंतेक़ाम का सिलसिला कायम न हो जाये। अगर



ज़ालिम अपने जुल्म पर शरमिन्दा हो जाये अगर उसकी ताकत कम पड़ जाये, वो देखे कि अब सिवाए शिकस्त के कोई और चारा नहीं रह गया है अगर वो अपने किये पर शरमिन्दा नज़र आये और उसके बाद वो आपसे मुआफ़ी का तलबगार हो तो मुआफ़ कर देना सब्र हे। जिसकी बेहतरीन मिसाल जनाबे रिसालत मआब ने फ़त्हे मक्का के बाद यूँ पेश की कि फ़रमाया फ़ज़ हबू व अनतुमुत्तुलाकाऊ जाओ मैंने तुम सब को छोड़ा।

लेकिन जब तक ज़ालिम अपनी कूवत पर अकड़ता रहे जब जुल्म अपनी ताकत पर नाज़ाँ हो जब अपने पुश्त पनाहों की ताकत पर उसको घमंड हो, उस वक़्त सर झुका देना सब्र नहीं बुज़दिली है। उस वक़्त सर झुका देना शिकस्त खुरदगी है। उस वक़्त सर झुका देना कमज़ोरी है, उस वक़्त सब्र के मआनी हैं जुल्म के मुकाबले में डटे रहना। उस वक़्त सब्र के मआनी हैं जुल्म की तलवार को कुंद कर देना। उस वक़्त सब्र के मआनी हैं तवक्कुल की सिपर लेकर यकीन की तलवार लेकर अल्लाह पर एतेमाद के असलहे से लैस होकर जुल्म से टक्कर पर टक्कर लेते रहना। जुल्म के आगे सर झुकाना सब्र नहीं है। कभी—कभी जुल्म मौका व महल देखकर साँस लेने के लिये सुल्ह की आवाज़ भी बलन्द कर देता है लेकिन जब तक शरमिन्दा न हो जाये जब तक उसकी ताकत टूट न जाये जब तक वो मज़लूमों पर जुल्म करने की सलाहियत रखता हो उस वक़्त तक सुल्ह की आवाज़ से धोखा खा जाना, उसके मक्र में आ जाना कमज़ोरी है। जब तक जुल्म अपने ऊपर नाज़ाँ रहे टक्कर लेते रहना ही सब्र है।

जिस तरह सब्र के मआनी हम ग़लत समझते हैं उसी तरह शुक्र के मआनी भी ये नहीं हैं कि हम ज़बान से कहते रहें। हकीक़ते शुक्र सिर्फ़ ज़बान से “शुक्रन लिल्लाह”—“शुक्रन लिल्लाह” कहना नहीं है बल्कि शुक्र उस जज़बे

का नाम है जिसकी बिना पर ऐहसान मंदी व इमतेनान का तसव्वुर पैदा होता है। जिसकी बिना पर वो नेअमत देने वाले के सामने सरे एताअत झुका देता है। शुक्र की पहली मंज़िल होती है नेअमत को पहचानना। हम ये तो पहचानें कि हमें कैसी नेअमत मिली है? उसके बाद ये पहचानें कि ये नेअमत देने वाला कौन है? और उसके बाद हमारे दिल में जो ऐहसान मंदी का जज़बा हो उसका इज़हार कभी लफ़्ज़ों से होता है और कभी अमल से होता है लफ़्ज़ों से जब इज़हार होता है तो हम मुनइम की हम्द करते हैं। की, नेअमत देने वाले की तारीफ़ करते हैं, और जब अमली तौर पर उसका मुज़ाहेरा होता है तो जितना ऐहसान बढ़ता जाता है हमारा सर उसके सामने झुकता चला जाता है। जितने ऐहसान होते जाते हैं हममें जज़ब—ए—ऐताअत कवी से कवी तर होता जाता है इसीलिये कुरआने मजीद ने ये इरशाद फ़रमाया है वबुदवकुम मिनशशाकेरीन। इबादत के साथ शुक्र को लाज़िम व मलज़ूम करार दिया है। यानी जब तुम्हारे दिल में जज़ब—ए—इमतेनान पैदा होगा तो उसका लाज़मी नतीजा सर का झुक जाना है। ज़ाहिर है कि जितनी नेअमत ज़्यादा होगी उतना ही जज़बए शुक्र में इज़ाफ़ा होता चला जायेगा। जिनकी नेअमतें महदूद हैं जब उनके सामने सर झुक जाता है तो जिसकी नेअमत का कोई शुमार ही मुमकिन नहीं हर सांस जिसकी नेअमत है। हर लम्हाए हयात जिसकी नेअमत है उसके शुक्र का अंदाज़ ये होना चाहिये कि ज़िन्दगी की हर सांस उसके शुक्र में बसर हो उसके शुक्र का अंदाज़ ये होना चाहिये कि हर लम्हाए हयात में उसके शुक्र के लिये हमारा सर झुका रहे अस्ल शुक्र ज़बान से कहना नहीं, बल्कि शुक्र का अंदाज़ ये है कि जो नेअमत दी गयी है। एक तालिबे इल्म का मैंने वज़ीफ़ा कर दिया वज़ीफ़ा जब मिला तो उस पैसे को उसने ग़लत राहों में सर्फ़ कर दिया

उसका नतीजा ये होगा कि आइन्दा महीने से मैं वजीफ़ा ख़त्म कर दूंगा। यही कुरआन कह रहा है लइन शकरतुम लाअज़ीदन्नाकुम अगर तुम शुक्रिया अदा करोगे यानी मेरी नेअमतों को सही राहों में सर्फ़ करोगे तो मैं तुम्हारी नेअमतों में इज़ाफ़ा करता चला जाऊँगा लेकिन अगर मेरी नेअमतों का कुफ़रान किया तो मेरे शदीद अज़ाब के लिये भी तय्यार रहो। ये आम इंसानों का अंदाज़ है कि कभी वो सब्र करते हैं कभी वो शुक्र करते हैं। कुरआने मजीद में सूरए फ़ज्र में बयान किया गया है कि अल्लाह कभी नेअमतें देकर इमतेहान लेता है और कभी नेअमतें सल्ब करके इमतेहान लेता है। नेअमतें देकर इमतेहान ले तो उसमें तुम्हारा लाज़ेमा शुक्र है। और नेअमतें सल्ब करे तो तुम्हारा फ़रीज़ा सब्र है। इसीलिये इरशाद है कि अलईमानो निस्फ़ान, ईमान के दो हिस्से हैं आधा हिस्सा सब्र है आधा हिस्सा शुक्र है। यानी अगर मुसीबत पड़े तो मोमिन का काम है सब्र करना। और अगर नेअमत मिल जाये तो मोमिन का काम है शुक्र करना। मगर ये आम मोमिनो का अंदाज़ है कुछ ख़ासाने खुदा ऐसे हुआ करते हैं कि जो मुसीबत को भी नेअमत समझा करते हैं कुछ अल्लाह के ख़ास बंदे ऐसे होते हैं जो कहते हैं कि उस ने हमें आजमाया उसने हमें इस क़ाबिल समझा कि हमारा इमतेहान ले। क्या ये उसका ऐहसान नहीं है? लेहाज़ा इमतेहान की मंज़िल में भी वो शुक्र किया करते हैं। वो कहते हैं।

“हर चे अज़ दोस्त मी रसद ख़ूब अस्त ”

दोस्त से जो कुछ भी पहुँच जाये वो अच्छा ही अच्छा है। वो हर मंज़िल में शुक्र ही शुक्र अदा करते नज़र आते हैं। हर मंज़िल आम लोगों की नहीं। ये बलन्द मरतबा है कि मुसीबत को नेअमत समझा जाये। जनाबे अबूज़र का तज़केरा इमाम हसन (अ0) के सामने हो रहा है। किसी ने मद्दह करते हुए कह दिया क्या कहना

अबूज़र का जो कहा करते थे कि मुझे सेहत से ज़ायद बीमारी पसन्द होती है और दौलत के मुकाबले में मुफ़लिसी ज़्यादा पसन्द है कि उन दोनों हालतों में अल्लाह ज़्यादा याद आता है। मगर इमामे हसन (अ0) उसके जवाब में फ़रमाते हैं कि हाँ अबूज़र का बलन्द मरतबा था मगर मैं वो नहीं कहता जो अबूज़र (अ0) ने कहा था मैं तो ये कहता हूँ कि एक बंदे को ये कहने का हक़ ही कहाँ है कि मुझे ये पसन्द है ये ना पसन्द मैं तो कहता हूँ कि मुझे वो पसन्द है जो मेरा अल्लाह पसन्द करे सलवात मेरी पसन्द और ना पसन्द अल्लाह की मरज़ी की ताबेअ है मेरे लिये जो अल्लाह पसन्द करे वही मुझे पसन्द है। मुसीबतों के मौक़े पर सब्र के बजाए शुक्र करने की मिसाल आपको देखना हो तो आइये शबे हिजरत उस वक़्त जब रसूल (स0) अली (अ0) से ये कह कर जा रहे हैं कि मुझे हुक्म हिजरत हुआ है और तुम्हें मेरे बिस्तर पर लेटने का हुक्म हुआ है खिंची हुई तलवारों में अली (अ0) का बिस्तर पर लेटना कोई मामूली बात न थी अली (अ0) की मंज़िलत ये है कि जिस वक़्त रसूल (स0) ने फ़रमाया तो अली (अ0) ने कहा क्या अल्लाह मेरे लेट जाने से आपको बचा लेगा? फ़रमाया हाँ उसने वादा किया है कि वो मुझे बचा लेगा। बस ये सुन कर अमीरुलमोमनीन (अ0) ने सर सजदए शुक्र में रखा और फ़रमाया उस खुदा का शुक्र जिसने मुझे अपने नबी का फ़िदिया क़रार दे दिया। और अब यहाँ पर तारीख़ कहती है कि ये पहला सजदए शुक्र था जो मक़ामे मुसीबत में किया गया। इसीलिये अली (अ0) के लिये इरशाद हुआ वमिनन्नास मय्यशरी नफ़स्हु बतगा मरज़ाति अल्लाह इंसानों में कुछ वो भी हैं जो अपने नफ़्स को बेच डालते हैं और रिज़ाए इलाही को ख़रीद लेते हैं। यानी उनका मक़सद बस रज़ाए इलाही का हासिल करना था।

अर्ज़ करूँगा कि अली (अ0) ही नहीं पूरा

खानदान ही ऐसा था कि जिसकी नज़र में अल्लाह की मरज़ी अल्लाह की रिज़ा सबसे ज़्यादा कीमती थी। जो मुसीबत को भी नेअमत समझा करते थे। जो मक़ामे मुसीबत में सजदए शुक्र करते थे और अगर उसकी मेराज देखना हो तो आपको करबला चलना पड़ेगा जहाँ आप देखेंगे कि मुसीबतें अपनी हदे आखिर पर पहुँच चुकी हैं। क्या ये कम मुसीबत थी कि हुसैन (अ0) को मदीना छोड़ना पड़ा? वो वतन कि जहाँ रसूल (स0) की क़ब्र भी, वो वतन जहाँ माँ का मज़ार भी, वो वतन जहाँ भाई की लहद भी। जानते हैं आप कि हुसैन (अ0) के दिल पर कितना सदमा था जब मदीना छोड़ रहे थे, रिवायत की लफ़्ज़ें हैं कि हर तरफ़ से कोहराम मचा था ये मालूम होता था कि भरे घर से जनाज़ा निकल रहा है। क्या हुसैन (अ0) के लिये ये मामूली बात थी कि जब हाजी हर तरफ़ से हज करने के लिये आ रहे हैं बस एक दिन पहले 8 ज़िल्हिज को जब सब आ रहे हों, हुसैन (अ0) मक्के को छोड़ कर करबला के बन की तरफ़ सफ़र करें। जिसने बीस हज पा प्यादा हज किये हों उसके लिये हज के मौके पर खानए खुदा को छोड़ देना मामूली इम्तेहान न था। लेकिन हुसैन (अ0) ने इस मुसीबत में सब्र किया।

अब तो मुसीबतों पर मुसीबतें आती चली गयीं। यहाँ तक कि जब मैदाने करबला पहुँचे तो मसायब का एक लशकर है जो हुसैन (अ0) के इस्तेक़बाल के लिये मौजूद था। कभी दरिया से ख़ैमे उखाड़े गये और हुसैन (अ0) ने सब्र किया। कभी बच्चों पर पानी बंद किया गया और हुसैन (अ0) ने सब्र किया यहाँ तक कि शबे आशूर आयी वो रात कि जिसको हुसैन (अ0) ने मांग कर हासिल किया था। ये बताने के लिये कि मुझे अल्लाह की रज़ा कितनी प्यारी है। यही तो फ़रमाया था कि मुझे अल्लाह की इबादत बहुत

पसन्द है, चाहता हूँ एक रात दिल भर के अल्लाह की नमाज़ पढ़ लूँ। यानी मुसीबतें आ रही हैं मगर जज़ब-ए-तशक्कुरे हुसैन (अ0) बढ़ता चला जा रहा है यहाँ तक की आशूर का दिन आया। आशूर का दिन वो दिन है कि जिस दिन मैं अर्ज़ करूँगा और दुनिया को दावत दूँगा कि कोई एक दिन आप ऐसा तारीख़ में ढूँड कर दिखा दें कि किसी पर इतनी मुसीबतें पड़ी हों जो चन्द घंटों में हुसैन (अ0) और अंसारे हुसैन (अ0) पर मुसीबतें पड़ीं। तीन दिन की भूक तीन दिन की प्यास उस भूक व प्यास के आलम में हुसैन (अ0) के सब्र की मंज़िल। उस आलम में प्यासों का ज़मीने करबला पर तयम्मूम करके नमाज़ अदा करना इधर नमाज़ ख़त्म हुई उधर दुश्मन के लशकर की तरफ़ से तीरों ने पैग़ामे जंग दिया। पहला तीर उमरे साअद ने चलाया, ये कह कर कि गवाह रहना पहला तीर लशकरे हुसैन की तरफ़ मैं फेंक रहा हूँ। मैं कहता हूँ पिसरे साअद! तेरा लशकर ही गवाह नहीं पूरी तारीख़ गवाह है कि जुल्म का पहला तीर तूही ने चलाया था। और ये तीर लशकरे हुसैन पर नहीं पड़ा ये तीर जुल्म की गर्दन को काट गया मालूम हो गया कि मज़लूमियत हमेशा के लिये फ़ातेह होती है जुल्म हमेशा के लिये मफ़तूह होता है।

उसके बाद तो तलवारों और तीरों और नैज़ों का मेंह बरसने लगा। असहाब ने अपनी कुर्बानियां पेश करना शुरू कीं। कभी जुहैरे कैन गये कभी मुसलिम इब्ने औसेजा गये। कभी हबीब इब्ने मुज़ाहिर गये। हाँ एक के बाद एक असहाब हुसैन (अ0) में अपनी कुर्बानी पेश करता चला गया ओर हुसैन (अ0) एक एक का लाशा लाते चले गये एक बूढ़ा मुजाहिद एक स्याह हबश का रहने वाला। एक गुलाम आता है। आकर बारगाहे हुसैनी में अर्ज़ करता है फ़रज़न्दे रसूल (अ0)! मुझे मरने की इजाज़त दीजिये। हुसैन (अ0) बूढ़े जौन को देखते हैं और कहते हैं

ऐ जौन! तुम इसलिये मेरे पास आ गये थे कि ज़रा राहत के दिन बुढ़ापे में बसर करलो। मगर अब क्या ज़रूरत कि मुसीबत भी बर्दाशत करो। ये सुन कर जौन ने अजीब जवाब दिया कि ऐ फ़रज़न्दे रसूल (स0) क्या मुझे इसलिये इजाज़त नहीं दे रहे हैं कि मेरी रगों में हब्शी खून है? क्या आप मुझे इसलिये इजाज़त नहीं दे रहे हैं कि मेरा नसब बलन्द नहीं है? खुदा की क़सम जब तक अपने हब्शी खून को बनीहाशिम के खून में मिला न लूंगा चैन न लूंगा। और हुसैन (अ0) ने चूँकि गुलाम को ज़रा रंज पहुँच गया था उस रंज को यूँ दूर किया कि जब ये बूढ़ा और जर्ईफ़ गुलाम ज़मीन पर गिरा हुसैन (अ0) खुद सराहने पहुँचे, सर उठा कर ज़ानू पर रखा ख़ाली ज़ानू पर सर ही नहीं रखा अपना रुख़सार जौन के रुख़सारे से मलना शुरू किया। ऐ जौन! जौन बड़ा ख़याल था तुम्हे कि तम्हारा रंग स्याह है। पालने वाले! जौन के रंग की स्याही को सफ़ेदी से बदल दे जौन के जिस्म को खूशबू से मोअत्तर कर दे। ये वो कुरबानियाँ थीं जो हुसैन (अ0) देते रहे यहाँ तक की जब अंसार न रह गये तो आइज़्ज़ा की बारी आयी कभी जनाबे मुसलिम (अ0) की औलादें आगे बढ़ीं। कभी ज़ैनब (अ0) के लाडलों ने इजाज़त तलब की। कभी कासिम (अ0) का पामाल लाशा हुसैन (अ0) सीने से लगा कर लाये। कभी जवान फ़रज़न्द ने आवाज़ दी या अबताह अलैका मिन्नस सलाम। बाबा अली अकबर का सलामे आख़िर क़बूल हो। कभी अब्बास ने कहा या अख़ी इदरक अख़ीक ऐ भाई भाई की मदद कीजिये। कभी अली अकबर का लाशा न उठा तो बच्चों को बुलाया कभी अब्बास की वसीयत पर अमल करना था तो अलम लेकर ख़ैमे पहुँचे। आख़री शहादत का वो कारनामा और वो शाहकार जिसको हुसैन (अ0) अपने हाथों पर बलन्द करके लाये आवाज़ दी ऐ कौमे जफ़ाकार! अगर तुम्हारी नज़र में मैं ख़ताकार भी

हूँ तो इस बच्चे की तो कोई ख़ता नहीं अरे कोई आकर अपने हाथों से मेरे इस मासूम को पानी पिला दे। मगर आप जानते हैं जवाब क्या मिला। तीरे हुरमुला से हुसैन (अ0) को जवाब मिला। बच्चा बाप के हाथों पर मुंक्लिब हो गया फ़अनकल्बि अला यदिल इमाम। बच्चा बाप के हाथों पे मुंक्लिब हो गया मैं कहूँगा आकर सब्र व शुक्र की मंज़िल देखिये इससे बढ़ कर कोई मुसीबत हो सकती है? मगर हुसैन (अ0) उस बच्चे के लाशे को लिये हुऐ कभी आगे बढ़ते हैं कभी पीछे हटते हैं कहते जाते हैं इन्ना लिल्लाहे वइन्ना इलैहे राजेऊन। ये सब्र की मंज़िल है। और फिर कहते हैं रिज़न बि कज़ायेही व तस्लीमन लेअमरेह पालने वाले! मैं तेरे फ़ैसले पर राजी हूँ। ये शुक्र कि मंज़िल है। हाँ ये आख़री कुर्बानी थी जो हुसैन (अ0) ने पेश की।

अब वो मंज़िल थी जो हुसैन (अ0) के लिये पहले ही आसान थी एक मरतबा मैदान में आये आवाज़ दी “अमामिन नासेरिन यनसोरोना अमामन जाब यज़िब अना” हुसैन (अ0) मदद के लिये पुकार रहे थे मगर जवाब में कोई तीर मार रहा था, कोई तलवार मार रहा था, कोई नैज़ा मार रहा था। अरे वो हुसैन (अ0) जिसके लिए रसूल (स0) फ़रमाते हैं “हुसैनो मिन्नी व अनामिनल हुसैन” हुसैन मुझ से है और मैं हुसैन से हूँ। उसी हुसैन के लिये मुसलमानों का अंदाज़ ये है कि उसी हुसैन के जिस्म को तलवारों तीरों और नैज़ों से टुकड़े-टुकड़े किये देते हैं यहाँ तक की अस्त्रे आशूर का वक़्त कि जिस से बड़ी कोई मुसीबत की घड़ी आज तक आयी ही नहीं। वो अस्त्रे आशूर का वक़्त जब सवारे दोशे रसूल (स0) घोड़े से ज़मीन पर गिरा। घोड़े ने घुटने तोड़ कर सवार को ज़मीन तक पहुँचने में आसानी दी। मैं अर्ज़ करूँ कि इधर तो हुसैन (अ0) घोड़े से ज़मीन पर आये होंगे और उधर फ़ातेमा (अ0) जन्नत से चली होंगी उधर रसूल (अ0) मदीने से



चले होंगे, उधर अली (अ0) नजफ़ से चले होंगे, रसूल (स0) ने पुकारा होगा मेरे बच्चे! मैं संभालने के लिये आ रहा रहूँ। फ़ातेमा (अ0) ने आवाज़ दी होगी ऐ मेरे बच्चे! तेरा सर हो और मेरा ज़ानू हो।

इधर अस्र का वक़्त था उधर ज़ैनब (अ0) फ़रयाद कर रही थीं या बिने सआद इक़तल अबूअबदिल्लाह व अन्ता तनज़र अलैह ऐ पिसरे सआद! मेरा मा जाया कत्ल किया जा रहा है और तू देख रहा है? हाँ दोस्तदाराने हुसैन (अ0) वो मंज़िल थी जब हुसैन (अ0) घोड़े से ज़मीन पर आये थे। आपने सुना होगा कि मुसीबतों की इंतहा हो चुकी है मगर हुसैन (अ0) ने क्या किया जलती हुई ज़मीन पर सर सजदऐ शुक्र में रख दिया। ये बताने के लिये कि हर मुसीबत की मंज़िल पर मैं सब्र से नहीं बल्कि शुक्र से गुज़र रहा हूँ। यहाँ तक की अस्र का आफ़ताब गुरुब की मंज़िल तक पहुँचा। हर तरफ़ तारीकी फैली, हर तरफ़ स्याही फैली। सब्र व शुक्र की मंज़िल हुसैन दिखा चुके थे। अब ज़ैनब (अ0) की बारी थी। अब उम्मेकुलसूम (अ0) की मंज़िल थी अब ज़ैनुलआबेदीन (अ0) की मंज़िल थी। आइये सब्र व शुक्र का इम्तेज़ाज देखिये वो ज़ैनब (अ0) जो तीन दिन की भूखी हैं। वो ज़ैनब (अ0) जो तीन दिन की प्यासी हैं। जिन्होंने हुसैन (अ0) के साथ हर मुसीबत बर्दाशत की है। जो अब तक हर मुसबीत बर्दाशत कर रही हैं। मगर मैं कहूँगा मौला हुसैन (अ0) इजाज़त दिजिये तो अर्ज करूँ कि आप के सीने पर बहत्तर दाग़ थे। आख़री दाग़ हसन (अ0) के फ़रज़न्द अबदुल्लाह का था। लेकिन ज़रा बहन को देखिये कि जिन्होंने आपको भी ज़िब्हा होते देखा। अरे ज़रा ज़ैनब (अ0) के दिल से पूछिये जिन्होंने आपको ज़मीने गर्म पर करवटें बदलते देखा।

हाँ यही ज़ैनब (स0) कि जिन्होंने मुसीबतें बर्दाशत की। यही उम्मेकुलसूम जिन्होंने मसायब

बर्दाशत किये। क्या मसायब ख़त्म हो गये? नहीं रात की तारीकी फैली बीबियां सिमट कर चन्द जली हुई क़नातो में आयीं। ज़ैनब (अ0) को याद आया कि हुसैन (अ0) अपने बच्चों को मेरे सिर्पुद कर गये हैं। अब जो तलाश करना शुरू किया तो दो बच्चे न मिले। ऐ बहन उम्मेकुलसूम अरे भय्या को क्या जवाब दूंगी? दो बच्चे नहीं मिल रहे हैं दोनों बहने तलाश के लिये चलीं। दूँडते दूँडते देखा कि एक ज़मीन पर दोनों बच्चे रुख़सारा खाक पे रखे आराम कर रहे हैं। एक का ज़ैनब (अ0) ने बाज़ू पकड़ा एक का उम्मेकुलसूम ने बाज़ू पकड़ा शाना हिलाया बच्चों सो चुके चलो ख़ैमों में चलो, मगर देखा ये कि ज़मीन को ज़रा सी मिट्टी हटा कर जब नरम ज़मीन मिल गयी अरे दोनों बच्चों ने प्यासे बच्चों ने अपने रुख़सारे नरम ज़मीन पर रख दिये। दोनों बच्चे बाप के पास पहुँच चुके हैं ये आख़री मुसीबत थी कि भाई की तरह दोनों बहनें छोटे-छोटे लाशें लिये हुऐ। आकर कहा होगा भय्या हुसैन (अ0) ये आख़री कुर्बानी है जो आप की ख़िदमत में पेश कर रही हूँ। हाँ दोस्तदाराने हुसैन (अ0) अरे किसी ने इतनी मुसीबतें बर्दाशत की होगी जितनी ज़ैनुलआबेदीन (अ0) ने? वो ज़ैनुलआबेदीन (अ0) जिनका लक़ब सैय्यदुस्साबेरीन। मगर ये शब क्यों कर बसर की ज़ैनुलआबेदीन (अ0) ने? रिवायत की लफ़्ज़ें हैं कि उन मुसीबतों में बीमार इमाम ज़मीने गर्म पर पेशानी रखे हुऐ ला इलाह इल्लललाह हक्का ला इलाहा इल्लललाह इमाना व तस्दीक़न सदक़ान सदका शुकरा शुकरन" ऐ मेरे मालिक ये हर कुर्बानी तेरी बारगाह में पेश है। पालने वाले हम हर मुसीबत पर सब्र नहीं शुक्र कर रहे हैं।

यही मंज़िलें थी कि ज़ैनब (अ0) ने एक मरतबा देखा कि फ़ौजों की तरफ़ से कुछ शमाएँ आ रही हैं। अली (अ0) की बेटी बिफ़र कर आगे बढ़ी। ऐ फ़ौज वालो! लूटना है तो कल लूट लेना

मेरे बच्चे ज़रा सो गये हैं। मगर शमाएं बढ़ती चली आ रहीं हैं। अली (अ0) की बेटी को गैज आया। अरे मैं रोक रही हूँ रुकते नहीं एक बीबी आगे बढ़ी। ज़ैनब (अ0) हम लूटने नहीं आये हैं अरे हम हुर (अ0) की ज़ौजा हूँ बच्चों के लिये थोड़ा खाना और पानी लाई हूँ। अजरोकुम अल्ललाह। ज़रा सुने आप हुर की ज़ौजा करीब आयी। ज़ैनब (अ0) ने देखा होगा कि अरे मेहमान की ज़ौजा है जां नेसार की ज़ौजा है। जिसने भाई पर जाननेसार की है। मगर तलाश किया होगा काश बीबी के सर पर कोई चादर होती ताकि मेहमान के लिये बिछा दी जाती। ज़ौजए हुर ने ख़्वांन रखे पानी कि मशकें पेश कीं। ज़ैनब (अ0) ने एक कूज़ए आब भरां आयीं वहां जहां सकीना ग़श में पड़ी थीं। शाना हिलाया बच्ची को होशियार किया कहा बीबी उठो पानी पी लो। अरे अभी उदठी थी एक मरतबा बच्ची ने पूछा क्या मेरे चचा आ गये क्या अब्बास पानी ले आये। कहा अब्बास कहाँ? ज़ौजए हुर पानी लायी है। अरे एक मरतबा पूछती हैं फुफ़ी आपने पिया कहा हमने अभी नहीं पिया है। कहा फिर मेरे लिये क्यों लायीं? कहा अरे तू सबसे छोटी है पहले तू पीले। ये सुनकर सकीना कहती हैं ऐ फुफ़ी लाइये जाम मुझे दीजिए हाथ में जाम लिये रूख किया मैदान का। अरे कहाँ चली सकीना? कहा आप ही ने तो कहा सब से छोटी हूँ। मेरा भाई अली असगर (अ0) वो प्यासा अली असगर वो तो मुझ से छोटा है। ऐ फुफ़ी। ऐ फुफ़ी पहले असगर (अ0) को पानी पिला लाऊँ फिर मैं पानी पियूंगी।

#### (बकिया पेज नं0 8 का ....)

की जान देना गवारा कर ली।

उन्होंने ने इस मौके पर अपने अजीज़ तरीन सरमाय-ए-हयात को भी अजीज़ नहीं किया। भाई भतीजों और दूसरे अजीज़ों के अलावह अपने जिगर के टुकड़ों यानी कमसिन और जवान फ़रज़न्दों को भी कुरबान कर दिया। और छः महीने का एक बच्चा भी जो तारीख़े आलम में इसके पहले इस तरह कुरबान ना हुआ होगा, उन्होंने इस्लाम की खातिर कुरबान कर दिया। आखिर जिस वक़्त कि उनके खज़ाने में कोई मोती, सरमाय-ए-हयात में कोई गौहर बाकी न रहा, उन्होंने वह आखिरी मरहला जो ख़ास उनकी ज़ात से तअल्लुक रखता था, उसे बहुत इस्तेक़लाल के साथ तै कर दिया और बेहद व शुमार ज़ख़्म जिस्म पर उठाके सरो गर्दन के बाहमी तअल्लुक को ख़ैर बाद कहा, ख़न्जरे शिग्र से कुछ देर के राज़ो नियाज़ के बाद जिस्म रेगे सहारा पर और सर नोके नैज़ा पर ख़ल्क़े खुदा की हिदायत का सामान करता नज़र आया। ये थे हुसैन अ0 और ये थी उनकी कुरबानी। ये था वाक़ेय-ए-करबला जिसकी यादगार हर साल मुहर्रम के ज़माने में कायम की जाती है।

(उर्दू समाचार पत्र “शिआ” लाहौर, मुहर्रम नवम्बर 1357 हि0/4 मार्च 1938 ई0 पेज नं0 16 से 17 तक)



#### (बकिया पेज नं0 6 का.....)

रखकर मुँह पर तमांचे मारता और कहता मुझको यह क्या हुआ था कि हुसैन को क़त्ल कर दिया। देखी ग़मे हुसैन की एजाज़ नुमाई, कातिल अज़ादारिए इमाम को ज़बर दस्ती मना कर रहा है। खुद कातिल एक दूसरे पर लानत कर रहे हैं।

रिआया बगावत करके ग़मे हुसैन मना रही है। खुद यज़ीद मुँह पर तमाँचा मार-मार कर रोता है। ग़मे हुसैन में इससे ज़ाएद सख़्त तसादुम अदावत व दुश्मनी का और क्या हो सकता है लेकिन ग़म उभरता ही जाता है। यह खुला हुआ है एजाज़ ग़मे हुसैन का।

(माखूज़ अज़ शिया लाहौर, मुहर्रम नमबर 1365 हि., दिसम्बर 1945 ई., स.25,26)

# हुसैन के वीर रूप में दर्शन

जनाब मिर्जा सज्जाद हुसैन लखनऊ विश्व विद्यालय, लखनऊ

करबला के रण-क्षेत्र में इमाम हुसैन के शहीद हो जाने के कारण बहुत से मनुष्यों के हृदयों में ये विचार घर कर गया कि इमाम हुसैन वीर न थे एवं दूसरी ओर व्याख्यान एवं लेख द्वारा इमाम हुसैन की सहनशीलता एवं धीरता का अत्यधिक वर्णन किया गया लेकिन उसके अंतर्गत जो इमाम हुसैन की वीरता एवं उनके वीर होने का गुण निहित था उसका बखान नाम-मात्र को ही किया गया इस बात ने भी उनके इस अशुद्ध विचार को कि इमाम हुसैन वीर न थे दृढ़ता प्रदान की। किन्तु ये विचार अक्षरसः असत्य, अशुद्ध एवं दोषपूर्ण हैं, वास्तव में इमाम हुसैन में धीरता एवं वीरता ये दोनों गुण समान मात्रा में उपस्थित थे तथा आप जितने धीर थे उतने ही वीर एवं जितने शक्तिवान थे उतने ही सहनशील तथा धैर्यवान तथा करबला के बलिदान स्थान में हुसैन की वीरता की झलक भी हमें पग पग दृष्टिगोचर होती है जैसे कि धीरता की।

किसी मनुष्य का वीर होना अथवा बलवान होना उसके पिता पर भी निर्भर हुआ करता है तथा कहा जाता है कि वीरता ईश्वरीय देन है एवं ये पैत्रिक है और ये पिता से पुत्र को स्थानान्तरित होती है तथा बहुधा वीर-पिता का वीर ही पुत्र होता है। वास्तव में ये कथन एवं उक्ति इमाम हुसैन के वीर होने का एक प्रमाण है। कौन इस्लाम के इतिहास पृष्ठों का अध्ययन-कर्ता नहीं जानता कि इमाम हुसैन वीरों में श्रेष्ठतम हज़रत अली के पुत्र थे जिनसा वीर न उनसे पहले अरब की वीर भूमि में कोई हुआ था एवं न उनके बाद कोई हो सका।

वही हज़रत अली जिनके सम्बन्ध में

इतिहासकार गिबन को ये लिखना पड़ा "One can not be brave like Ali" कि कोई अली जैसा वीर नहीं हो सकता। इमाम हुसैन उन्हीं अली के पुत्र थे तो आपका वीर होना स्वभाविक ही था।

आइये करबला के युद्ध में इमाम हुसैन की वीरता के कुछ दृश्य देखें।

वास्तव में वीर वही है जो लाखों से अकेले जूझ पड़ने में भी संकोच न करे एवं अपने साथियों एवं सेनाओं की न्यूनता पर भी दृष्टि न डाले एवं प्राणों को हथेली पर लेकर युद्ध करे। ये ही गुण हम इमाम हुसैन में देखते हैं। आप नौ-मुहर्रम की रात्रि को अपने सब साथियों से कहते हैं कि तुमने मेरी रक्षा एवं सहायता करने का प्रण किया था, उस प्रतिज्ञा को मैं स्वयं ही तुमसे अलग किये देता हूँ, उसका तुम विचार न करो, देखो ये यज़ीदी केवल मेरे रक्त के प्यासे हैं तुम में से जो चाहे चला जाये, यदि तुमको लज्जा का बोध हो रहा हो तो देखो ये दीपक जो जल रहा है इसको बुझाय देता हूँ अब इस अंधकार में तुम जिधर शरण पा सको चले जाओ। इमाम हुसैन के ये शब्द स्वयं बता रहे हैं कि आप को अपनी शक्ति एवं अपने बाहुबल पर इतना विश्वास था कि आप इस टिड्डी-दल सेना के लिए केवल अपने को ही पर्याप्त समझते थे।

10 वीं मुहर्रम के प्रातःकाल से युद्ध प्रारंभ हो गया था। इमाम हुसैन को केवल एक बार ही युद्ध न करना पड़ा था बल्कि कितनी बार ही। जब आपका कोई सम्बन्धी अथवा साथी रण-क्षेत्र में लड़ते लड़ते मृत्यु को प्राप्त होता था या आप उसके शव को लेने जाते थे, तो ये एक स्वभाविक एवं स्वयं-सिद्ध वस्तु है कि जो शत्रु

रण—क्षेत्र लड़ रहे हों तथा वास्तव में उनका ध्येय हुसैन के जीवन—दीप को बुझा देना हो वह हुसैन को किसी साथी अथवा सम्बन्धी का शव सरलतापूर्वक ले जाने देते होंगे? नहीं कदापि नहीं, इतिहास के पृष्ठ साक्षी है कि हुसैन को प्रत्येक के शव को लाने में टिड्डी—दल सेना का सामना करना पड़ता था किन्तु वीरों में श्रेष्ठतम हुसैन हर बार विशाल सेना से अकेले हुसैन का विजयी होना हुसैन के वीर ही नहीं अपितु वीरों में श्रेष्ठतम होने का एक उज्ज्वल प्रमाण है।

जब समस्त साथी एवं सम्बन्धी मृत्यु के घाट उत्तर चुके एवं प्रेमी रूपक पंतिगे इमाम हुसैन रूपी दीपक पर अपने प्राण निछावर कर चुके तब इमाम हुसैन युद्ध करने के लिये चले एवं शत्रुओं के झुन्डों को परलोक गामी करते हुए फ़रात नदी तक पहुँच गये एवं ये इमाम हुसैन की साधारण वीरता का प्रतीक शत्रुओं को मारना फिर नदी जहाँ पर असंख्यक सैनिक केवल इसलिये बिठाये गये थे कि किसी भी भाँति जल हुसैन के खैमों में न पहुँचे! मगर हुसैनी धीरता कि नदी पर अधिकार हो जाने पर भी जल न पिया किन्तु शत्रुओं को अपनी अपार शक्ति का परिचय दे दिया।

उसके बाद हुसैन ने युद्ध प्रारंभ किया हुसैन जिधर तलवार लेके टूट पड़ते थे शत्रुओं के समुह नरकवासी हो जाते थे तथा आप के हमले से शत्रु इस प्रकार भागते थे जिस प्रकार भेड़िये के आक्रमण करने से बकरियाँ भागती हैं, ये इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णक्षरों में अंकित है।

किसी वीर से वीर तथा बलवान से बलवान मनुष्य का आपसे मुकाबला करने का साहस न होता था। मिस्टर गोहन इसे इन शब्दों में लिखते हैं “शत्रुओं का वीर से वीर सूरमा इस मरते हुये प्यासे योद्धा (इमाम हुसैन) के हमले का सामना न कर पाता था और भाग खड़ा होता था तथा निर्दयी शिमार जिससे

मुसलमानों को घृणा है उन सैनिकों एवं सिपाहियों को धिक्कारने लगता था”।

इस बातुल वसाया नामक पुस्तक में है कि इमाम हुसैन ने 1800 शत्रुओं का दमन किया एवं इब्ने शहर आशोब में है कि 1900 शत्रुओं का क़त्ल इमाम हुसैन ने किया है। कुछ इतिहासकारों ने इमाम हुसैन की वीरता का प्रदर्शन करते हुये लिखा है कि इमाम हुसैन श्रेष्ठतम वीर थे यही कारण था कि अपार एवं विशाल सेना का मुकाबला आप ने अकेले किया एवं किसी बार भी आप भागे नहीं जिस का प्रमाण वे यों देते हैं कि आपके वक्ष स्थल एवं शरीर के अगले व सामने के भाग पर तो अनेकों बाण लगे थे किन्तु पीठ पर कोई बाण न लगा था।

जब क्रूर एवं पापी इब्ने सादने देखा कि यदि एक एक करके लड़ेगा तो हुसैन सब को ही मृत्यु के घाट उतार देंगे तो उसने अपनी सेना को आदेश दिया और ललकार कर कहा कि तुम सब मिलकर हुसैन पर हमला कर दो। ये सुनना था कि शत्रु चारों ओर से टूट पड़े कोई बाणों की वर्षा करने लगा, कोई तलवार लगाने लगा एवं कोई पत्थर फेंकने लगा, उस समय हुसैन ने भी तलवार निकाली एवं हमला करना शुरू किया आप तलवार लेकर जिधर टूट पड़ते शत्रुओं के शीश कट कट के इस प्रकार गिरते थे जैसे पतझड़ ऋतु में वृक्षों से पत्ते गिरते हैं।

किन्तु कहाँ तक लड़ते। घावों के वाहुल्य ने घोड़े पर न बैठने दिया, घोड़े से गिरे तो फिर पैदल युद्ध करना प्रारम्भ किया, उस समय हुसैन की वीरता का वर्णन धार्मिक पुस्तकों में इस प्रकार मिलता है:—

जब आप ने पैदल युद्ध करना प्रारम्भ किया और ऐसा युद्ध किया जिस ने घुड़ सवारों को मात कर दिया एवं अनेकों धुड़ सवारों को आपने क़त्ल किया, वीरों के शरीरों में कपकपी उत्पन्न हो गयी, अरब के वीरों की बुद्धि चकित



हो गयी तथा उन की सोचने-विचारने की शक्ति तुप्त हो गयी” ।

आप की वीरता का मिस्टर जेम्स कारक्रन अपनी पुस्तक “चीन की तारीख” जो उर्दू भाषा में है यूँ उल्लेख करते हैं :-

(हिन्दी अनुवाद उसी के शब्दानुसार) “रुस्तम का नाम संसार में वीरता के लिए प्रसिद्ध है किन्तु कई व्यक्ति ऐसे गुज़रे हैं कि उनके सामने रुस्तम का नाम लेने के योग्य नहीं । उसमें हज़रत इमाम हुसैन का नाम प्रथम है क्यों कि अरब के रेगिस्तान में प्यास से जिसने ऐसा सुन्दर युद्ध किया हो उसके सामने रुस्तम का नाम वही लेगा जो इतिहास से परिचित न हो । किसकी लेखनी में इतनी शक्ति है कि वह हुसैन का हाल लिखे ।

किसकी वाणी में इतना बल है कि उन बहत्तर महापुरुषों की दृढ़ता एवं आश्चर्यजनक शक्ति व वीरता तथा 20 हज़ार क्रूर शाम निवासियों के उत्तर-स्वरूप तथा एक एक के क़त्ल होने के सम्बन्ध में प्रशंसा जैसी कि चाहे कर सके किसके विचारों की पहुँच इतनी दूर तक है कि वह उनके हृदयों की दशा का ज्ञान कर सके कि उन पर क्या बीती उस समय जब उमरे साद ने 10000 सवारों से उन्हें घेर लिया उस समय जब शिमरे मलऊन (क्रूर व अत्याचारी शिग्र) ने सर काट लिया । हुसैन और 72 अन्य व्यक्तियों को आठ प्रकार के शत्रुओं ने तंग किया था, उस पर भी क़दम न डिगे जब कि चारों ओर से 10,000 व्यक्तियों की सेना यज़ीद की थी जिनके तीरों (बाणों) और नैजों की बौछार आंधी की भाँति आती थी । पांचवाँ शत्रु अरब की धूप थी जिसकी कोई उपमा नहीं मिलती एवं यही लिखना होता है कि अरब की धूप की भाँति अरब ही की धूप है । छठा शत्रु वह रेत का मैदान था जो अपनी प्रचण्डता में सूर्य को भी पराजित करता है जिसकी गर्मी से बनी फ़ातिमा (फ़ातिमा के पुत्रों) के पांवों

में छाले पड़ गये थे । सातवाँ व आठवाँ शत्रु भूक और प्यास थी जो एक विश्वासघात करने वाले मित्र के समान थी जिसके समान कोई शत्रु नहीं । ऐसी परिस्थित में सहस्त्रों शत्रुओं का सामना किया और इतना अच्छा, उन पर वीरता का अंत हो गया” । (तारीख चीन भाग 2 अध्याय 16)

इब्ने अबिल हदीद शरहे नहजुल बलागा में लिखते हैं:- एक व्यक्ति ने उमरे साद के एक साथी से जो करबला में हुसैन के विपक्षियों में था कहा कि तुमने हज़रत मुहम्मद के सम्बन्धियों को मृत्यु के घाट उतारा । शोक का विषय है । ये सुनकर उसने जो उत्तर दिया वह पढ़ने के योग्य है:- हमसे ऐसी सेना जूझ पड़ी थी जिनके हाथों में तलवार थीं अर्थात् वह तलवार चलाने में अति निपुण थी । जो क्रोधित सिहों की भाँति थे । बायें दायें सेनाओं को रौंदते तथा अपने को मौत के मुंह में डाले दे रहे थे, न तो उनको प्राणों का भय था न धनादि का लोभ (वे हर प्रकार से हमले कर रहे थे । यदि हम उनको थोड़ा भी समय देते तो वे हमारी सेना के एक एक मनुष्य को मार डालते । ऐसे समय पर हम क्या करते “युद्ध के अतिरिक्त” । हम क्या तुम भी वही करते ।

यद्यपि इसमें असत्य का पुट अवश्य है क्योंकि इमाम और उनके साथी तो युद्ध करने पर विवश किये गये न कि उन्होंने स्वयं युद्ध आरम्भ किया किन्तु इससे इतना तो अवश्य ज्ञात होता है कि इमाम हुसैन तथा उनकी मुठ्ठी भर सेना ने आवर्णन एवं अति उत्तम वीरता का प्रदर्शन किया ।

यहाँ पर एक दृश्य और प्रस्तुत कर देना उचित समझता हूँ जिससे यह भली भाँति स्पष्ट हो जायेगा कि करबला की रणभूमि में हुसैन ने कैसी उच्चतम वीरता का प्रदर्शन किया है । जब एक बार अपने आप मियाँ मिट्ठू बनते हुये पापी शिग्र कहता है कि वे लोग (इमाम हुसैन, उनके सम्बन्धी और साथी) हमारे सामने से मुँह छिपाये

फिरते थे और थोड़ी ही देर में हमने उनका सफाया कर दिया। उस समय हज़रत जैनुब (हुसैन की बहिन) कहती हैं कि ऐ झूठे! मेरे भाई ने तो ऐसा युद्ध किया और इतने अधिक शत्रुओं को मारा कि आज कूफ़े का कोई घर ऐसा नहीं है जहाँ कोई न कोई शोक न मना रहा हो अर्थात् अत्यधिक एवं अनगिनत शत्रुओं को मारा।

ये थी हुसैन की वीरता। फिर इस पर भी विचार करिये कि हुसैन किन परिस्थितियों में युद्ध कर रहे थे। मौलाना मोहसिन नवाब मुजतहिद अपने एक लेख में लिखते हैं:-

(हिन्दी अनुवाद) प्यास और कैसी प्यास? कितने दिन की प्यास 1 यदि 7 मुहर्रम से जलबन्द कर दिया गया था तो फिर 10 मुहर्रम को प्यास को तीसरा दिन था या चौथा। 3 दिन की प्रसिद्ध केवल इस कारण हो गयी कि 10 मुहर्रम को 3 दिन पूरे हो चुके थे यद्यपि 10 वीं से चौथा दिन प्रारंभ हो चुका था किन्तु वह समाप्त नहीं हुआ था अतएव 3 दिन कहे जाते हैं। प्यास भी किस ऋतु की? ग्रीष्म ऋतु की, गर्मी भी कहाँ की? अरब के रेगिस्तान (मरुस्थल) की। खेमे नदी से दूर, दिन भर धूप में चलना, फिरना, लड़ना, शवों पर पहुँचना, लाशें (शवों को) उठाना।

सम्बन्धियों तथा साथियों की मृत्यु का शोक, हृदय व शरीर को फूट देने वाला दुख, घावों का अधिक्य फिर महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों का ज्ञान तथा बनी हाशिम के वंश का स्वाभिमान इन सब बातों को संग्रहित कर विचारिये कि इन सब के पश्चात् किसी मनुष्य में इतनी भी शक्ति शेष रह सकती है कि वह थोड़ा सा चल भी सके। उस पर आश्चर्यजनक युद्ध, हज़ारों शत्रुओं का दमन फिर आपके आश्चर्य में और भी वृद्धि होगी जब आपको ये ज्ञात होगा कि आप युद्ध में अपनी दैवी शक्ति (ऐजाजी ताक़त) को प्रयोग में नहीं ला रहे थे।

यदि धार्मिक दृष्टिकोणानुसार विचार करिये

तो यह भी ज्ञान होना चाहिये कि आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति को प्रयोग में नहीं ला रहे थे, आप को तो शहीद होना था तथा अपने बाल्यकाल में किये गये प्रणा की पूर्ति करना थी। आपने तो केवल उनको अपनी वीरता दिखाने के लिए ही ऐसा उत्तम युद्ध किया यदि कहीं आप पूर्ण रूपेण स्वतंत्र होते और आपको किसी प्राण की पूर्ति न करनी होती तो उस वीरता का वर्णन मानव अपनी वाणी एवं जिह्वा से कदापि न कर पाता। युद्ध सामग्री का न जुटाना, दीपक भुझाकर लोगों से चले जाने को कहना तथा लड़ते-लड़ते तलवार म्यान में रख लेना इस बात के प्रमाण हैं कि आप शहीद होना चाहते थे युद्ध करना आपका ध्येय न था।

धार्मिक दृष्टिकोणानुसार इमाम के युद्ध करने तथा सर्व-साधारण के युद्ध में महान अन्तर है। सर्व-साधारण तो युद्ध करते समय जिसको पाते हैं मृत्यु के घाट उतार देते हैं परन्तु इमाम ये भी देखता है कि वह मनुष्य जिसको क़त्ल किया जा रहा है उसकी संतानों में कोई गुणवान तथा धार्मिक पुत्र (व्यक्ति) तो होने वाला नहीं है यदि ऐसा होता है तो इमाम का हाथ रुक जाता है और उसे जीवित छोड़ देते हैं। यही बात (सिद्धान्त) इमाम हुसैन के सम्बन्ध में भी लागू होती है।

उपरोक्त स्थलों के अध्ययन के पश्चात् हम यह सरलता-पूर्वक कह सकते हैं कि हुसैन का वीरता एवं धीरता दोनों गुणों पर समान अधिकार था एवं हुसैन जैसे धीर थे वैसे ही वीर। यह तो इतिहास के पृष्ठों में स्पष्ट लिखा है कि करबला की करुणाजनक घटना के पूर्व वीरता एवं वीर की उपमा हज़रत अली से दी जाती थी। किन्तु करबला के युद्ध के पश्चात् वीरता के उपमान इमाम हुसैन हो गये।

(इमामिया मिशन, लखनऊ द्वारा प्रकाशित पुस्तिका)



# मुहर्रम क्यों मनाया जाता है?

लेखिका:— श्रीमती कनीज़ क़मर अब्बास, सिगरौसी, उन्नाव

आज से 1330 वर्ष पूर्व, मोहर्रम 61 हिजरी में इस्लाम धर्म के प्रवर्तक पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब के नवासे हज़रत इमामे हुसैन ने करबला के रेगिस्तानी मैदान में तीन दिन की भूख और प्यास में सूखते हुए इस्लामी वृक्ष को अपने-अपने संबन्धियों तथा घनष्टि मित्रों के शुद्ध एवं पवित्र रक्त से सींचा था, जिसकी याद प्रत्येक वर्ष मोहर्रम में मनायी जाती है। करबला की दुःखान्त घटना विश्व के इतिहास में अद्वितीय है क्योंकि एक महान व्यक्ति ने धर्म नैतिकता एवं सत्य की रक्षा हेतु न केवल अपना बलिदान किया वरन अपने साथ बहत्तर संबन्धियों परम मित्रों एवं साथियों का शहीद होना तथा अपने पवित्र परिवार की सम्मानित स्त्रियों का बन्दी होना भी स्वीकार किया।

मोहर्रम का चाँद निकलते ही इमाम हुसैन की याद हृदय को बेचैन कर देती है। उन्होंने जिस महान त्याग तपस्या कर्तव्य पालन तथा बलिदान का प्रदर्शन किया उससे सभी व्यक्तियों के हृदय अवश्य प्रभावित होते हैं। यदि करबला में उन्होंने अपने अदम्य उत्साह साहस धैर्य एवं दृढ़ता के साथ इस्लाम की रक्षा न की होती तो वस्तुतः इस्लाम समाप्त हो गया होता। करबला में उन्होंने केवल इस्लाम की ही रक्षा की वरना मानवता के प्रतीक थे और यज़ीद अधर्म अन्याय असत्य एवं अन्धकार का पुजारी था। दोनों में टकराव अनिवार्य था क्योंकि अधार्मिकता दुष्चरित्रता असत्य अन्याय एवं अनैतिकता का साम्राज्य स्थापित करने वाली शक्तियों का विरोध सदैव किसी न किसी महान आत्मा ने किया है। अब एक ओर यज़ीद की शक्ति एवं सम्पत्ति है और

दूसरी ओर इमाम हुसैन का महान सिद्धान्त तथा उच्च आदर्शों में अटूट विश्वास।

इमामे हुसैन हज़रत मुहम्मद साहब के नवासे और हज़रत अली के पुत्र थे। उनके घर से इस्लाम फैला था इस्लाम की शिक्षाओं को सर्व प्रथम मुहम्मद साहब ने फैलाया था उनके पश्चात हज़रत अली आपके उत्तराधिकारी हुए जिसकी घोषणा स्वयं पैगम्बर साहब ने अपने जीवन काल में कर दी थी परन्तु मुसलमानों ने आपको उत्तराधिकारी (खलीफ़ा) न मान कर प्रथम खलीफ़ा हज़रत अबू बक्र को चुन लिया। दूसरे खलीफ़ा हज़रत उमर तथा तीसरे खलीफ़ा हज़रत उसमान हुए ख़िलाफ़त न मिलने पर भी हज़रत अली चुपचाप इस्लाम की रक्षा तथा विस्तार के प्रयत्न करते रहे। तीसरे खलीफ़ा की मृत्यु के बाद सम्स्त मुसलमानों ने सर्वसम्मति से हज़रत अली अ0स0 को चौथा खलीफ़ा मान लिया शिया मुसलमान आपको पैगम्बर साहब का प्रथम उत्तराधिकारी (इमाम) मानते हैं। हज़रत अली पैगम्बर साहब के चचेरे भाई तथा दामाद थे आपने प्रत्येक संकट कालीन परिस्थिति में हज़रत मुहम्मद साहब की रक्षा तथा सहायता की थी। हज़रत मुहम्मद साहब तथा हज़रत अली बनी हाशिम गौत्र से संबन्धित थे। बनी हाशिम गौत्र की उत्तति तथा सफलताओं को देखकर बनी उमैया गौत्र के सदस्य ईर्ष्या करते थे।

हज़रत अली को नमाज की हालत में इब्ने मुलजिम नामक दुष्चरित्र ने ज़हरीली तलवार का वार लगाया जो घातक सिद्ध हुआ। हज़रत अली ने अपने उत्तराधिकारी अपने बड़े पुत्र हज़रत हसन को घोषित किया जिनको शिया दूसरा

इमाम तथा अन्य मुसलमान अपना खलीफ़ा मानते हैं बनी उमैया परिवार ने खिलाफ़त प्राप्त करने के लिए षडन्त्र रचना आरम्भ कर दिए। इमाम हसन शान्ति प्रिय थे तथा अपने नाना एवं पिता के आदर्शों तथा सिद्धान्तों का पूर्ण रूपेण पालन करते थे। उन्होंने अनुभव किया कि कि शांतिपूर्वक खिलाफ़त चलाना तथा मुसलमानों का नेतृत्व करना दुष्कर होता जा रहा है। वह वास्तव में ईश्वर के प्रतिनिधि थे तथा सांसारिक भोग विलास एवं ऐश्वर्य को उचित समझते थे। खिलाफ़त को लोग ललचाई निगाहों से देख रहे थे हज़रत इमाम हसन ने शान्ति को बनाये रखने के लिए स्वेक्षा से खिलाफ़त त्याग दी और मुआविया तख़्ते खिलाफ़त पर बैठा परन्तु इस शर्त के साथ कि उसका पुत्र यज़ीद उसकी मृत्यु के पश्चात उत्तराधिकारी न बनेगा।

इमाम हसन की उपस्थिति खलीफ़ा को फूटी आखों न भाती थी अतः उसने उनको ज़हर दिलवाकर शहीद करा दिया। अब इस्लाम का प्रतिनिधित्व, इस्लाम की रक्षा का भार और इस्लामी शिक्षाओं के प्रचार व प्रसार का कार्य हज़रत इमाम हुसैन के कंधों पर पड़ा वह हज़रत मुहम्मद साहब के छोटे नवासे अर्थात् हज़रत अली के छोटे पुत्र थे। पैग़म्बर साहब उन से अत्यधिक प्रेम करते थे।

बचपन में उन्हें अपने कंधों पर बिठाते थे उनके गले को बहुत चूमते थे कि “मेरा हुसैन मुझसे है और मैं हुसैन से हूँ”। हुसैन मुझसे है का अर्थ स्पष्ट है क्योंकि इमाम हुसैन उनकी पुत्री हज़रत फ़ातिमा के पुत्र थे। मैं हुसैन से हूँ। इस वाक्यांश का अर्थ भ्रम में डालता है परन्तु विचार करने से ज्ञात होता है कि पैग़म्बर साहब ने यह इस लिए कहा था कि एक दिन करबला में इमाम हुसैन उनके इस्लाम की रक्षा करके अपना तथा उनका नाम अमर कर देंगे।

मुआविया की मृत्यु के पश्चात यज़ीद

अपने पिता मुआविया तथा इमाम हसन के मध्य की गई सन्धि का उल्लंघन करके स्वयं खलीफ़ा बन बैठा। वह खिलाफ़त के पद को भाग विलास का आसन समझता था। उसमें संसार की सभी बुराइयाँ विद्यमान थीं। उसने इस्लामी शिक्षाओं का खुले रूप से तिरस्कार करना आरम्भ कर दिया। वे सभी बातें जिनको इस्लाम ने मना कर दिया था यज़ीद ने उचित कर रखी थी वह एक निर्दयी और कठोर एवं भोग विलासी सम्राट के रूप में शासन करना चाहता था परन्तु मुसलमानों का खलीफ़ा बन कर। उसने नैतिकता धर्म एवं अधर्म तथा सत्य एवं असत्य के भेद को समाप्त कर दिया। एवं इस्लाम को पूर्ण रूप से बिगाड़ना चाहता था परन्तु इस्लाम के वास्तविक रक्षक पैग़म्बर साहब के वास्तविक उत्तराधिकारी एवं मानवता के अमर सेनानी इमाम हुसैन जीवित थे।

यज़ीद ने अपनी सम्पत्ति तथा शक्ति के बल पर साधारण मुसलमानों से जो अपने को खलीफ़ा मनवा लिया था और अब यह चाहता था कि इमाम हुसैन भी उसको खलीफ़ा मान लें उसने आप से सवाले बैअत किया अर्थात् अपने को खलीफ़ा माने जाने का आग्रह किया ताकि उसके दुष्कर्मी अत्याचारों तथा राजसी ठाठ बाट पर पर्दा पड़ जाये। इमाम हुसैन ऐसा कदापि नहीं कर सकते थे। अपने नाना के चलाए हुए अपने पिता के बढ़ाये हुए तथा अपने बड़े भाई के संवारे हुए इस्लाम को मिटता हुआ नहीं देख सकते थे।

इमाम हुसैन ने सवाले बैयत ठुकरा दिया और विपत्तियों एवं कष्टों को सहन करने का निश्चय कर लिया। यज़ीद अपनी खिलाफ़त के मार्ग में इमाम हुसैन को एक बाधा समझता था क्योंकि विश्व के सामने दो इस्लाम आगये थे एक हुसैन का इस्लाम और दूसरा यज़ीद का इस्लाम। यज़ीद चाहता था कि इस्लाम पर उसका एकाधिकार हो जाय और उसके दुष्कर्मी को कोई

टोक न सके। उसने इमाम हुसैन को बाध्य किया कि वे उसको खलीफा स्वीकार कर लें अन्यथा: जीवन से हाथ धोने के लिए तैयार हो जायें।

इमाम हुसैन का मदीने में रहना कठिन हो गया जहाँ नाना का मज़ार तथा माँ की कब्र थी उन्होंने मदीना छोड़ा और मक्का आबाद किया। मक्के में भी न रहने पाये। उन्होंने मक्के को त्याग दिया और ईराक का इरादा किया। उन्होंने अपने बच्चों स्त्रियों संबंधियों तथा मित्रों को साथ लिया क्योंकि आप युद्ध नहीं करना चाहते थे और न कोई सेना ही आपके पास थी। रास्ते में यज़ीदी सेना ने घेरा। आप दो मोहर्रम 61 हिजरी को करबला के रेगिस्तान में पहुँचे। फुरात के किनारे खेमे लगाने से रोक दिया। उसी समय आपके छोटे भाई अब्बास क्रोधित हो उठे और युद्ध के लिए तैयार हो गए परन्तु इमाम ने अपने भाई को शांत करते हुए समझाया कि हम युद्ध में पहल नहीं करते।

करबला का रेगिस्तान उमरे साद के नेतृत्व में यज़ीदी सेनाओं से छलक उठा। यज़ीद की सेना में कम से कम तीस हजार सैनिक थे और इमाम के साथ बच्चों जवानों तथा बूढ़ों को मिलाकर कुल सौ सवा सौ व्यक्ति थे। गर्मी, लू और धूप में पानी बन्द। इमाम के साथी विशेष कर बच्चे प्यास से तड़पने लगे। पानी का बन्द कर देना किसी भी धर्म में उचित नहीं समझा जाता। दिन पर दिन और रातों पर रातें गुज़रने लगीं यहाँ तक कि नवीं मोहर्रम आ गयी। उमरे साद ने अपनी सेना को आदेश दिया कि इमाम हुसैन और उनके साथियों पर आक्रमण करके उन्हें मौत के घाट उतार दिया जाए यदि वे अब भी बैयत नहीं करते हैं।

यदि इमाम हुसैन यज़ीद की शक्ति के सामने झुक जाते, उसे अपना खलीफा मान लेते, उसके दुष्कर्मों को इस्लामी मान लेते तो निश्चय ही उनकी जान बच जाती परन्तु उच्च आदर्शों

तथा महान सिद्धान्तों का खून हो जाता। इमाम ने अपने भाई हज़रत अब्बास से कहा कि भाई इन शत्रुओं से एक रात की मोहलत ले लो ताकि हम अपने खूदा की इबादत और कर लें। उमरे साद पहले तो नहीं माना परन्तु अपनी ही सेना के कहने पर एक रात की छूट देने पर सहमत हो गया। यह रात जिसे शबे शहादत (क़त्ल की रात) कहा जाता है इमाम और उनके साथियों ने इबादत में गुज़ारी।

दसवीं मुहर्रम (यौमे शहादत) को प्रातः होते ही उमरे साद ने इमाम के खेमों की ओर अपना पहला तीर छोड़ कर युद्ध आरम्भ कर दिया। इमाम हुसैन के साथी एक एक करके इमाम की रक्षा में कम होने लगे। कभी अब्दुल्लाह कलबी शहीद हुए, कभी हबीब इब्ने मुज़ाहिर, कभी जुहैरे कैन, कभी जौन, कभी मुस्लिम इब्ने हनफी, कभी अबू सुमामा सैदावी। जब इमाम के मित्र शहीद हो चुके तो इमाम के निकटतम सम्बन्धियों ने अपनी जानें इमाम पर, इस्लाम पर, ईमान पर न्योछावर करना आरम्भ किया। इमाम के भान्जे औन व मुहम्मद युद्ध करने गये। और शहीद हुए, भतीजा कासिम शहीद हुआ बराबर के भाई 32 वर्षीय अब्बास ने फुरात के किनारे अपने शाने कटा कर शहादत प्राप्त की। तीस हजार की सेना के सामने एक व्यक्ति लड़ने जाता था तो कुछ व्यक्तियों को मार कर शहीद हो जाता था। अब्बास की शहादत के पश्चात 18 वर्षीय जवान पुत्र अली अकबर सीने पर बर्छी खाकर शहीद हुआ। अब इमाम के पास कुछ न था जो इस्लाम पर बलिदान करते मगर हाँ अभी छः महीने का बच्चा अली असगर था। इमाम ने अली असगर को गोद में लिया शत्रुओं के सामने आये। आपने कहा कि तुम मुझे गुनहगार समझते हो तो इस छः महीने के जीव ने क्या जुर्म किया है? यह तो मासूम बच्चा है। मैं इसे जलती रेत—पर लिटाये देता हूँ तुम दो बूंद पानी इसे



पिला दो। विरोधी सेना इमाम के वाक्यों को सुन कर रो पड़ी परन्तु उमरे साद ने हुर्मुला को आदेश दिया कि हुसैन की बात को काट दे। उसने एक ज़हरीला तीर चलाया जो बच्चे की गर्दन पर पड़ा और बच्चा बाप के हाथों पर शहीद हो गया।

अब इमाम खेमें में अन्तिम बिदाई के लिए आये। अपनी बहनो ज़ैनब व उम्मे कुलसूम, पत्नियों उम्मे लैला, रबाब पुत्रियों कुबरा, रुकैया और सकीना तथा माँ की कनीज़ फ़िज़्ज़ा से बिदाई ली और सबको अन्तिम सलाम किया। उस समय आपके एक पुत्र हज़रत ज़ैनुल आबेदीन जीवित थे जो बुखार से बेहोश थे आपने उनका शासन हिला कर उनको अपना उत्तराधिकारी (इमाम) बनाया और भविष्य की विपत्तियों का मुकाबला करने की प्रेरणा दी।

इमाम हुसैन सेना के सामने आये। उन्होंने अन्तिम बार फिर कहा कि मैं तुम्हारे रसूल का नवास हूँ परन्तु उन जालिमों ने चारो ओर से आक्रमण करना आरम्भ कर दिया ज़ख्मों से चूर हो कर इमाम अपने घोड़े से ज़मीन पर गिरे और शिम्र नामक ज़ालिम ने उनके सर को जुदा किया। उमरे साद ने कहा कि इमाम और उनके साथियों की लाशों को पामाल किया जाये अर्थात् उन पर घोड़े दौड़ाये जायें इमाम के खेमों में आग लगा दी जाये और उनकी स्त्रियों के सिर से चादरें छीन कर उन्हें बन्दी बना लिया जाये। मज़लूम स्त्रियों और बच्चों को बन्दी बना लिया गया और इमाम का सब सामान लूट लिया गया। उमरे साद ने निदर्यता त्रूरता तथा कठोरता की सीमाओं को समाप्त कर दिया। यदि कोई स्त्री या बच्चा पिता को याद करके रोता था तो उसके कोड़े मारे जाते थे और भाले चुभो दिये जाते यज़ीद के दरबार में ले जाया गया।

इमाम हुसैन और उनके सम्बन्धियों तथा साथियों पर जितने अधिक जुल्म हुए वे इतिहास

में अद्वितीय हैं। यही कारण है कि करबला की घटना इतिहास में अमर हैं जिसकी याद प्रत्येक वर्ष मोहर्रम में मनायी जाती हैं। इमाम के अनुयायी इमाम पर किये जुल्म को याद करते हैं और उनकी बेकसी बेबसी तथा बेचारगी पर आँसू बहाते हैं। इमाम के विशाल व्यक्तित्व का प्रभाव यह था कि उनके सभी साथियों ने इमाम का अनुकरण किया और शहादत को गले लगाने में गर्व तथा गौरव का अनुभव किया। मोहर्रम में मजलिसों की जाती हैं। मजलिस का अर्थ है कि लोगों का एक स्थान पर एकत्र होना और महान त्याग एवं बलिदान को याद करना। जो मुसलमान इमाम हुसैन अ0 को अपना तीसरा इमाम सझते हैं या उनसे अधिक श्रद्धा रखते हैं। वे मजलिसों में इमाम की कुर्बानी को याद करके फूट-फूट कर रोते हैं। मोहर्रम में जुलूस निकाले जाते हैं। इमाम के अनुयायी अपने अपने घरों में ज़रीह और ताज़िये रखते हैं ज़रीह इमाम हुसैन की कब्र की नकल है। ताज़िया इमाम के रौज़े के बाहरी भाग से समानता रखता है। अलम इस्लामी पताका है। अलम में एक छोटी सी मशक बंधी रहती है जो इस बात की याद दिलाती है कि दस मुहर्रम को हज़रत अब्बास बच्चों के लिए पानी लेने फ़रात पर गये थे परन्तु पानी खेमे में न आ सका था क्योंकि एक विरोधी सैनिक ने तीर मार कर मशक का पानी बहा दिया था। जुलजनाह इमाम के घोड़े को कहते हैं जिसकी नक़ल आज भी बनायी जाती है और और साध कारण भाषा में उसे दुल-दुल कहते हैं। तख़्त या ताबूत उठाये जाते हैं। जो जनाजे (कफ़नाई हुई लाश) की नक़ल होते हैं। मार्सिया, नौहे, सोज़, आदि कविताओं का रूप हैं जिसमें इमाम हुसैन की शहादत का वर्णन होता है।

इमाम की इस महान कुर्बानी से इस्लाम अब तक जीवित है ओर प्रत्येक मोहर्रम में इस्लाम में नयी चेतना जागृत हो जाती है। इमाम हुसैन

# बलिदान

## श्रीमती नारवन आरा रुदौलवी

आरम्भ करती हूँ उसके नाम से  
जो इस संसार का सृष्टा है।

कोई भी बात कहने और उसकी वास्तविकता को सिद्ध करने के लिये इतिहास और तर्क दोनों की आवश्यकता है। क्योंकि इस वैज्ञानिक काल में युवा मन तब तक किसी बात को स्वीकार नहीं करना चाहता जब तक उसके समक्ष ऐतिहासिक आदर्श तर्क संगत प्रमाण के साथ प्रस्तुत न किया जाए।

यूँ तो संसार में अनगिनत धर्म हैं और ज़ाहिर है हर धर्म के मानने वालों के विचार अलग-अलग हैं। इसके अतिरिक्त कुछ वे लोग होते हैं जो किसी धर्म में आस्था नहीं रखते, कुछ वे होते हैं जो विशेषता मानवता को ही धर्म मानते हैं अब यह बात अलग है कि मानवता है क्या ? इसका सटीक जवाब खोजने में असफल रहें। फिर भी ऐसे व्यक्ति बहुधा इस्लाम से निकट होते हैं जो धार्मिक मनोप्रती के होते हैं उन्हें कुछ समझाना सरल होता है जबकि वे व्यक्ति जो किसी भी धर्म में आस्था नहीं रखते उन्हें कोई बात समझाना अत्यन्त कठिन होता है। उनको धार्मिक दृष्टि के बजाए तार्किक दृष्टि से समझाना कारगर हो सकता है।

यूँ तो मेरा अध्ययन नहीं के बराबर है फिर भी मैंने प्रयत्न किया है कि कुछ लिखूँ।

संसार में मानवता का यह नियम रहा है कि जब भी कहीं क्रूरता की आँधी चली, सत्य की दीपशिखा झिलमिलाई, वहीं कोई न कोई महान पुरुष बढ़ कर उस शिखा को बचा लेता है। इसके लिये यदि आवश्यकता है तो अपने प्राणों की बाज़ी भी लगा देता है।

संसार में चार प्रकार की वस्तुएं मिलती

हैं जिसमें चेतन, अचेतन दोनों ही पाई जाती हैं। पहले नम्बर पर पत्थर, दूसरे पर पेड़-पौधे, तीसरे नम्बर पर पशु-पक्षी और चौथे नम्बर पर मनुष्य। अब इन सब की एक सीमा को कोई पार करने लगता है तो उसे रोकना पड़ता है—यही न्याय है, यही धर्म है और यही मानवता है।

जब पत्थर रास्ते में बाधा बने तो उसे हटा दिया जाता है, पेड़-पौधे रुकावट डालें तो उन्हें हटाना पड़ता है, पशु-पक्षी अपनी सीमा से आगे बढ़ें तो उन्हें रोकना आवश्यक होता है। किसी प्रकार सीमा से आगे बढ़े हुए मनुष्य को भी हटाने का प्रयत्न किया जाता है। यह प्रयत्न दोनों ओर से होता है यानी जो सत्य पर होता है वह असत्य पर अड़े हुए व्यक्तियों को रोकने का प्रयत्न करता है और पलट कर दूसरा झुण्ड सत्मार्ग पर चलने वालों को विभिन्न प्रकार से रोकने का प्रयत्न करता है, और इस कलह में वे ही सफल होते हैं जिनके पास सत्य की शक्ति होती है। यही वह स्थान है जहाँ जान की बाज़ी लगा देना एक सरल कार्य बन जाता है।

कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं जिन्हें पूरा मानव संसार आदर की दृष्टि से देखता है जैसे सुन्दरता, कला, वीरता, ज्ञान, सत्यता और किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये बलिदान आदि। इनमें बलिदान (लक्ष्य की प्राप्ति के लिए) सबसे अधिक प्रभावकारी होता है। जिसकी सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि कुर्बानी देने वाला किसी एक देश का न होकर पूरे मानव संसार का “हीरो” बन जाता है। इतिहास में नाना प्रकार के बलिदान मिलते हैं—राजनैतिक, धार्मिक और मानवता को बचाने के लिये।

जिन बलिदानियों ने देश को स्वतन्त्र कराने के लिये अपने प्राण दिये उनको जहाँ तक सम्भव हुआ देशीय इतिहास ने अपने पन्नों पर जगह देकर सदा के लिये सुरक्षित कर लिया। शहीद की याद भी मनाते हैं मगर ऐसे बलिदानी का आदर एक सीमित दायरे में रहता है। यही बात धर्म पर प्राण देने वालों के लिये है किन्तु जो मानवता को बचाने के लिये अपने प्राणों की बलि देता है उनकी प्रसिद्ध राजनैतिक और भौगोलिक सीमायें पार कर सकल संसार में फैल जाती हैं।

विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है “सुक़रात” के लिये केवल दो लाइनें ही लिख देना पर्याप्त होगा— जो यूनान का निवासी था। उसे मृत्यु—दण्ड देकर यह मान लिया गया था कि इसके विचारों के प्रभाव से यूनान को छुटकारा मिल गया किन्तु हुआ उसका उल्टा। सुक़रात ऐसा “हीरो” बन गया जो यूनान ही में नहीं पूरे संसार में प्रसिद्ध हो गया और तब यूनानियों ने यह जाना कि उन्होंने बहुत बड़ी भूल की।

दूसरी कुर्बानी इंग्लैंड के इतिहास में है। बादशाह “हेनरी अष्टम” के समय में सर ‘जानमोर’ एक महान पुरुष था। राजा से उसकी मित्रता थी, राजा उसके पास आया भी करता था। एक बार हेनरी और चर्च में कुछ झगड़ा हो गया और यह बहुत बढ़ गया, हेनरी ने चर्च का इतना विरोध किया कि उसके नियमों के खण्डन में एक पुस्तक भी लिख डाली। उस पुस्तक पर कई महापुरुषों के हस्ताक्षर भी लिये और चाहता था कि सर जान मोर भी उस पर हस्ताक्षर कर दें जिससे इस पुस्तक की प्रमाणिकता में कोई सन्देह न रह जाए। सर जान ने केवल हस्ताक्षर से इन्कार ही नहीं किया वरन् यह कह कर उस पुस्तक का विरोध भी किया कि **राजा को चर्च के किसी भी कार्य में हस्तक्षेप करने का क्या अधिकार है ?**”

बादशाह आग बबूला हो गया और कहा

कि इस विरोध की सज़ा जानते हो ? उत्तर मिला जी हाँ, ! **“सज़ा—ए—मौत”**। इस घटना के पश्चात् उसे सज़ा—ए—मौत हुई। उस समय से दोनों ही इतिहास के पन्नों में जगह पा गए मगर किस तरह ?

कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि भेंट और वह भी प्राणों की भेंट, हर व्यक्ति के बस की नहीं। इस प्रकार इतिहास में और भी कई महापुरुष मिलेंगे जिन्होंने बड़ी सरलता से अपने प्राणों की बाजी लगाई।

यहाँ मुझे निवेदन करने दीजिये कि केवल अपना प्राण दे देना फिर आसान है परन्तु अस्ल कुर्बानी तो वह है जो उन चीज़ों की दी जाय जो प्राणों से भी ज़ियादा प्रिय और चहीती हों। ऐसे उदाहरण आपको सभी धर्मों विशेष कर आकाशीय धर्मों में बहुत मिलेंगे परन्तु अगर यह निवेदन किया जाये कि इस राह में इस्लाम का रिकार्ड सब से अच्छा और ऊँचा है, तो शायद ग़लत न हो। जहाँ बड़े—बड़े साहसी और वीर पुरुष मिलेंगे उन्हीं में हज़रत इब्राहीम पैग़म्बर (अ0) का नाम है। हज़रत इब्राहीम (अ0) के बलिदान को संसार में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है और इस्लाम में तो इबादत के तौर पर उसकी याद मनाई जाती है। बक़रअ़ीद का उत्सव उसी बलिदान की याद है।

हज़रत इब्राहीम (अ0) ने एक बार सपने में देखा कि वह अपने प्यारे पुत्र को अपने हाथों ही ज़िब्ह कर रहे हैं। हज़रत इब्राहीम (अ0) निश्चय ही ईश्वर को पहचानते थे, विचार हुआ ईश्वर की यही इच्छा है कि मैं अपने हाथों से अपने पुत्र को ज़िब्ह करूँ (बेटे को लेकर मैदान में पहुँचे) एक पिता को संसार में पुत्र से ज़ियादा और कौन सी चीज़ प्यारी हो सकती है ! मगर हज़रत इब्राहीम (अ0) ने बेटे को ईश्वर की इच्छा पर कुर्बान कर देने की कोशिश कर के बताया कि **(बक़िया पेज नं0 31 पर )**

## मताए रबाब

फ़ख़रे कौम मौलवी सय्यद कलबे अब्बास एडवोकेट जनरल सिकरेटरी आल इंडिया शिया कांफ्रेंस

हज़रत अली असगर(अ०) और जनाब सकीना(अ०) को मताए रबाब(अ०) सब जानते और समझते हैं और ठीक समझते हैं इस लिए कि “अल मालो वल बनून जीनतुल हयातिद दुनिया” कौले इलही है। यह भी क़सामे अजल की पुर अदल तकसीम थी कि एक को सिनफ़े जुकूर में और दूसरे को सिनफ़े अनास में से मताए रबाब (अ०) करार दिया। शायद इसे हमारे दोनों सिनफ़ के बच्चों के लिए उन दोनों को उसवए हसना करार देना मकसूद था। करबला में मताए रिसालत जहाँ लुटती मताए रबाब भी लुट गई। “लुट गई” कहूँ या राहे खुदा की “अमिट वदियत” हो गई कहूँ। इस लिए कि उन्हीं दो बच्चों से “रबाब” का नाम चलता रहेगा और बच्चों की आरजु माँ को सिर्फ़ इस लिए होती है कि उसके नाम लेवाओं का नाम बाकी रहे। शायद इस ग़म नसीब कोख जली माँ को यह तसकीन हो कि यह दोनों बच्चे आमाजगाहे सितम तो बने मगर सितम ज़दों के ज़ख़्महाए दिल का मरहम भी बन गए। रहती दुनिया तक जब किसी माँ की गोद ख़ाली होगी तो अली असगर(अ०) जैसे शीर ख़्वार की याद उसके ग़म की शिद्दत को कम कर देगी और जब गुरबत में कोई बच्ची सुपुर्दे ख़ाक होगी तो सकीना(अ०) की ज़िनदाने शाम में मौत उसके दर्द को मदधम कर देगी।

यह तो इंसानियत के ज़विय-ए-नज़र से रबाब(अ०) और उनके बच्चों की मौत का तज़क़िरा था। ज़रा उसके अख़लाकी पहलू पर भी नज़र डालिए एक ने फ़ौजे शाम में तहलका डाल दिया दूसरे ने यज़ीद जैसे शक़ी के दिल को गदाज़ कर दिया। एक ने बे ज़बानी के बावुजूद “कलाम” किया कि उमरे साद से “इक़ता कलामुल हुसैन” काहुक्म सादिर कराया और दूसरे ने ज़िनदाने

शाम में वह दर्द भरी फ़रियाद की कि यज़ीद का ख़्वाब व ख़ोर हराम हो गया हत्ता कि उसकी बे कसी की मौत उसराए हुसैनी की खुलासी का बाइस हुई। उन दोनों की मौत उममत की हयाते अबदी है। इस लिए कि दोनों ने अपनी जानें अच्छे मक़सद के लिए दीं। एक ने बाप की नुसरत राहे हक़ में की और दूसरे ने उनको यज़ीदी जुल्म व तशद्दुद से छुड़ाकर जुल्म व तशद्दुद की बेख़कुनी की। दोनों का काम तबलीगे हक़ था। एक ने शाम व इराक़, अरब व हिजाज़ के इज़दिहामे कसीर में वह ऐलाने बे गुनाही किया कि दुश्मनों से भी अपनी बे गुनाही का एतेराफ़ करा लिया और दूसरे ने भरे दरबार में जो नुमाइंदगी के लिहाज़ से करबला के मैदान से कम न था अपने रूहानी तसरुफ़ात का वह मौजिज़ा दिखाया जो बाप—बेटी की मुहब्बत का अफ़साना बन गया। मुमकिन है कि बाज़ माद्दा परस्त इसको हकीक़त से दूर समझें मगर जब हम वाक़ियात का मुतालिआ करते हैं तो ऐसी मिसालें हमें तारीख़ी सवानेह में मिलती हैं। इंगलिस्तान में मलिका मेरी के अहद में जब ईसाई जमाअतों में मज़हबी अस्बियत मरदुम कशी और जां सतानी तक पहुँच चुकी थी और प्रोटेस्टेंट अक़ीदे के मशाहीर क़त्ल किए जा रहे थे तो एक शख़्स टामस मोर नामी बर सरेदार ख़ींचा गया और उसका सर नैज़े पर चढ़ाकर दरियाए टामस के मशहूर विलसेट मिनिस्टर बृज पर से फ़ौजी जुलूस के साथ गुज़ारा गया। सरे राह किसी कैथोलिक के तमाशाई होकर खड़े रहने की इजाज़नत न थी। उसकी लड़की मार ग्रेट पुल के नीचे एक कश्ती में बैठी हुई अपने बाप के दीदार का आख़िरी नज़ारा करने के लिए उस जुलूस की मुनतज़िर थी। जब टामस मोर

का सर नैज़े पर नस्ब वेस्ट मिनिस्टर बृज पर पहुँचा तो उसचहीती बेटी ने बड़ी बे चैनी से पुकारा कि मेरे बाप अगर तुम मुहब्बत रखते हो तो मेरी गोद में आ जाओ। गोल्डन डेट्स मतबूए मेकमिलियन्स लंदन में लिखा है कि जो लोग नैज़ा लिए हुए थे उनके हाथ कंपकपाए और सर को हरकत हुई और वह मार ग्रेट की गोद में जा गिरा और उसने उसका बोस—ओ—किनार शुरू कर दिया। सारा मजमा इस मुहय्येरुल उकूल वाकिये को देखकर उस तरफ़ टूट पड़ा और बिल आखिर किसी तरह वह सर फिर दस्तेयाब किया गया। क्या दरबारे यज़ीद में यज़ीद की इस फ़रमाईश पर कि “सकीना तुम अगर बाबा की प्यारी हो तो सरे हुसैन को अपने पास बुला लो” ऐसा ही वाकिया नहीं हुआ कि सरे हुसैन(अ.) को हरकत हुई और वह सकीना की गोद में जा पहुँचा। कुव्वते इरादी और कुव्वते ज़ब्ब से भी ज़ियादा हैरत अंगेज़ वाकियात रूनुमा कर सकती है। क्या उस बाप—बेटी के मिलाप ने सारे दरबारियों में एक तअज्जुब की लहर न दौड़ा दी होगी कि कटा हुआ सर जो तन से जुदा था किसी कुव्वते रूहानी के तहत मुताहरिक हुआ और एक फ़सिक और ज़ालिम के चैलेंज को कुबूल करके उसको दरबारे आम में ज़लील व ख़्बार किया। क्या यज़ीद के ख़िलाफ़ नफ़रत व इनतेक़ाम की रूह उसी वक़्त से दरबारियों में नहीं दौड़ी और क्या उसी वाकिये का यह रद्दे अमल न था कि यज़ीद बहुत मुतासिर हुआ और उसी वक़्त से अहलेबैते हुसैनी की रिहाई पर आमादा हो गया। जनाबे अली असगर (अ0) का उनवाने शहादत तो ऐसा है कि इस शीर ख़्बार को “फ़ातहे करबला” कहना हक़ बजानिब है “करबला की जंग दो बादशाहों की जंग मुल्क गीरी थी”। यह बोहतान मुस्तरिद न होता अगर हज़रत अली असगर (अ0) बाप के हाथों पर खुले मैदान शहीद न होते। कौन बाप छः महीने के बच्चे को

हाथ में लेकर तीरो तबर, नैज़ा व ख़नजर के जंगल में आएगा और ऐसे ग़ैर मुसलह बे ज़बान मासूम से इस्तेगासए अल अतश सूखे होंटों पर ज़बान फेर कर बलंद कराएगा? यह तो तब ही हो सकता था कि उसका मक़सद महज़ यह रहा हो कि दुनिया देख ले औरसमझ ले कि मेरा मक़सद लड़ाई नहीं है महज़ ऐलाने बे गुनाही है। “रबाई ज़मबिन कोतेलत” का नौहा बलंद कराना था। फ़ौजे अशकिया से इसका एतेराफ़ कराना था कि बे गुनाह बे ज़बान, बे आब शीर ख़्बार भी नावके जुल्म का निशाना बनाए जा रहे हैं। इस बच्चे ने बाप की हक़ परस्ती और मासूमियत साबित कर दी और हुसैन मज़लूम (अ0) के सर से यह ग़लत इलज़ाम हमेशा के लिए उठा लिया कि जंगे करबला मादी जंग थी। या जंग भी थी? शहादते अली असगर (अ0) वाकिय—ए—करबला का वह ज़ररी कारनामा है जिसने बातिल के सियाह दाग़ को और ज़ियादह नुमायाँ कर दिया जो हमेशा के लिए यज़ीद के लिए कलंक का टीका है।

छुड़ाए से न छूटेगा अरे ज़ालिम न बन लड़का शहीदाने वफ़ा का ख़ून क्या धब्बा है कीचड़ का इंसानियत के दामन का दाग़ छुड़ाए नहीं छूटता। तारीख़े आलम हमेशा हक़ व बातिल के इमतियाज़ के लिए अली असगर (अ0) की मासूमियत और यज़ीद की बहीमियत को अपने दामन में महफूज़ रखेगी। यज़ीद समझता था कि जुल्म का बोल—बाला है। इस नन्हे मुजाहिद का जिहादे बिल अमल निराला था। सूखे होंटों से प्यास का मुज़ाहेरा और मुस्कुराते लबों से मौत का ख़ैर मक़दम रबाब के लिए यह आखिरी प्यार था कि अच्छी मां के बच्चे अच्छे मक़सद के लिए हंसते—खेलते जान देते हैं और बाद की नस्लों को यह सबक़ दे जाते हैं।

हरगिज़ न मीरद आँ कि दिलश ज़िन्दा शुद बइश्क़ सन्न अस्त बर जरीदए आलम दवामे मा (सरफ़राज़ लखनऊ मताए रबाब नवम्बर जून 1958ई., ज़िल हिज्जा 1377हि., पेज 40,41 से अनुवादित)



# अज़ादारी व ताज़ियादारी

उलमाए अहले सुन्नत के फतवों की रोशनी में।

हिन्दिरूप : जनाब गुलाम हुसैन जैदी साहब

**मेरे सुन्नी व हनफी भाइयो!**

सय्यदेना हज़रत इमाम हुसैन रज़ी अल्लाहो तआला अनहु की शहादत इस्लाम का एक ग़ैर मामूली हादेसा है। “मिशकात शरीफ़” और दूसरी मोतबर (विश्वस्त) किताबों से पता चलता है कि दसवीं मोहर्रम को हज़रत रसूले मक़बूल स० को ख़्वाब में रोते हुए और परेशान देखा गया और तमाम उलमाए इस्लाम का मुत्तफ़िका (सर्वमान्य) फैसला है कि जब आंख़रत को ख़्वाब में देखा जाएगा तो ये ख़्वाब सच्चा होगा। इसलिए इस दिन के रंजो ग़म का दिन होने में कोई शुब्हा (सन्देह) नहीं किया जा सकता।

कोई नेक काम इसलिए नहीं छोड़ा जा सकता कि वह काम राफ़जी भी अंजाम देते हैं। वह नमाज़ पढ़ते हैं तो क्या हम रोज़ा रखना छोड़ दें। राफ़ज़ियों से ज़्यादा ख़तरनाक ये बहाबी हैं जिनके मुनाफ़िक़ और इस्लाम के दुश्मन होने के फ़तवे उलमाए अहले सुन्नत वल जमाअत पहले दे चुके हैं। ये भेस बदल कर अहले सुन्नत को वरग़लाते हैं। ये अपने को सुन्नी ज़ाहिर करते हैं जबकि इनका हमसे कोई ताल्लुक नहीं है। कुरआन और हदीस और उलमा के इरशादात को तोड़ मरोड़ कर अपने मतलब की बात बनाने में बड़े शातिर (चालाक) हैं। इसलिए मुसलमानों को इस यज़ीदी टोले से होशियार रहना चाहिए। हर साल ये लोग ताज़ियादारी के ख़िलाफ़ सऊदी अरब के पैसे की मदद से मुहिम चलाते हैं। और हमारे सय्यदो सरदार हज़रत मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह स० के दीन के ख़िलाफ़ मुहम्मद इब्ने अब्दुल वहाब नजदी के बिदअती दीन को फैलाना

चाहते हैं। इनके दिलों में हज़रत रसूले मक़बूल स० उनकी औलाद अज़वाज (बीवियों) और असहाब के ख़िलाफ़ बुग़ज़ कूट-कूट कर भरा है। ये महफ़िल मीलादे-रसूल को बिदअत कहते हैं। ये ताज़ीमे रसूल स. को नाजायज़ जानते हैं। ये रौज़ए रसूल स. के गुंबदे ख़ज़रा को मुआज़अल्लाह बुत कहते हैं और इसी तरह हमारे रसूले मक़बूल स० के चहीते नवासे सय्यदेना हज़रत हुसैन के मज़ार शरीफ़ की नक़ल ताज़िया को बुतपरस्ती बताते हैं। हर मुसलमान जानता है कि ताज़िया बुत नहीं है उसकी इबादत नहीं की जाती है। ये क़ब्रे हुसैन अ० की नक़ल है और अहले सुन्नत वलजमाअत की मोतबर किताब “फ़तावाए आलमगीर” में मौजूद है कि हुज़ूर स० ने क़ब्र की नक़ल बनाने का हुक्म दिया है।

इस्लाम में बिदअते सय्येआह की सख़्त मख़ालिफ़त है यानी दीन में तब्दीली करना और उसूल व क़वानीने इस्लाम घटा बढ़ा देना। ताज़ियादारी सदियों से होती चली आई है। ये भी इस्लाम की तबलीग़ का एक ज़रिया है न कि दीने इस्लाम में इज़ाफ़ा (बढ़ोत्तरी)। जिस तरह अज़ान और मज़हबी तकारीब (उत्सव) के लिए लाउडस्पीकर वग़ैरा का इस्तेमाल तबलीग़ का ज़रिया है बिदअत नहीं। अगरचे ये रसूल के ज़माने में नहीं था। इसी तरह ताज़िया भी तबलीगे इस्लाम का ज़रिया है। हम नीचे चन्द क़दीम (पुराने) उलमाए अहले सुन्नत के इरशादात नक़ल कर रहे हैं जो इस बात का सबूत हैं कि अज़ादारी व ताज़ियादारी तो क़दीमी चीज़ है अलबत्ता इसकी मुख़ालिफ़त बहुत बाद में शुरू हुई जो यकीनन (अवश्य)



## हज़रत मौलाना सलामत अली खां देहलवी मरहूम शागिर्द हज़रत शाह अब्दुल अजीज़ मुहदिस देहलवी

ये कहते हैं, “खुदा का शुक्र है कि ताज़ियादारी आसारे इस्लाम (इस्लाम की निशानियों) में से है और आलम (दुनिया) बहुत सी वजहों से बहराअन्दोज़ होता (फ़ायदा उठाता) है और इससे दीनी फ़ायदे हासिल होते हैं।”

(तबसिरतुल ईमान, पेज 220, मतबूआ कलकत्ता)

## देवबन्दी आलिम हज़रत मौलाना अशरफ़ अली थानवी:—

उसने कहा मेरे यहां ताज़िया बनता है फिर हम हिन्दू काहे को होने लगे। मैंने उसको ताज़िया बनाने की इजाज़त दे दी और मेरी इजाज़त का माख़ज़ एक दूसरा वाक़ेया है कि अजमेर में हज़रत मौलाना मुहम्मद याक़ूब साहब रह0 ने ताज़िये की नसुरत (मदद) का हुक्म दिया था।

(एफ़ाज़ातुल यौमिया मौलाना अशरफ़ अली थानवी)

## हज़रत मौलाना अब्दुल वाहिद फिरंगी महली रह0:—

ये कहते हैं इस ज़माने के उलमाए सालेहीन (नेक उलमा) ने ताज़ियादारी को शआएरे इस्लाम (इस्लाम का तरीक़ा) समझते हुए इसकी तरवीज़ (प्रचार) व बका (बाकी रखने) के लिए फ़तवा दिया है बस उस ज़माने के उलमाए सालेहीन ने ताज़ियादारी करने के बारे में जो फ़तवा दिया है वो बिल्कुल सही व दुरुस्त है और ताज़ियादारी की तरवीज़ (प्रचार) सवाब व अज़े अजीम का सबब है मौलाना निज़ामुद्दीन मुहम्मद व मौलाना अब्दुल हई व मौलवी मजीदुद्दीन व मौलवी अनवारुलहक़ व मौलवी नूरुलहक़ और दूसरे उलमाए फिरंगी महल व अतराफ़े हिन्द के (हिन्दुस्तान के दूसरे हिस्सों के) उलमा जब ताज़िये को देखते थे तो ताज़ीम के लिए खड़े हो जाते थे और दोनों हाथ ताज़िये की तरफ़ दराज़ करके (बढ़ाकर) निहायत खुजू व खुशू (गिड़गिड़ा

कर) और इजजो इन्केसार (आजिज़ी) के साथ फ़ातिहा पढ़ते थे। (रिसाल—ए—इज़ालतुल अवहाम)

## हज़रत मौलाना ख़्वाजा हसन निज़ामी (सज्जादानशीन दरगाह निज़ामुद्दीन औलिया देहली)

ताज़ियों, निशानों, जुलूसों और मजालिसों की मुख़ालिफ़त किसी मुसलमान को न करना चाहिए बल्कि तबलीगी हज़रात को इन बातों के कायम रखने की कोशिश करना चाहिए क्योंकि इनमें इस्लाम की तबलीग़ पोशीदा है।

(नक़ले इश्तिहार, सन् 1927 ईसवी)

## हज़रत मौलाना अब्दुर रहमान साहब (अलमुखातिब बेमक़बूलुन नबी)

यकीनन क़यामत तक ताज़ियादारी ख़त्म न होगी इसलिए कि इसका एहतेमाम खुदा और रसूल स. की जानिब से है किसी के बन्द करने से ये बन्द हो सकता है न होगा।

(अनवारुर रहमान तनवीरुलजिन्नान, मतबूआ लखनऊ, 1287 हि0 पे0 359)

कदवतुल मुहक्केकीन हज़रत मौलाना हाफ़िज़ मुहम्मद ख़ालिफ़ साहब हनफ़ी हंसवी मरहूम बाज़ का यह कौल (कहना) है कि ताज़िया देखने से निकाह टूट जाता है अगर इस फ़तवे को मान लिया जाए तो हिन्दुस्तान में जितने हैं सब ग़ैर हलाली हुए। इसलिए कि हिन्दुस्तान में कोई ऐसा आदमी न होगा जिसने ताज़िया न देखा हो।

(दाफ़े इल्ज़ाम आअन्नी जवाजुत्ताज़िया मिनल

अदिल्लुश्शरिआ, मतबूआ अस्से जदीद प्रेस, मेरठ)

## हज़रत मौलाना मुहम्मद नईमुल्लाह साहब कादरी गोरखपुरी मरहूम

हज़ारों आलिम व फ़ाज़िल गुज़रे, किसी ने इस (ताज़िये) को मना न किया और बराबर इसको अच्छा समझते आए पस हुवा जब ज़माना वहाबियों का और शुरू पाया उनसे मज़हब ने, तो ठहराया उसको नाजायज़, क़रार दिया (बताया) उसको बुत, और यह बईद नहीं है उनसे, क्योंकि रौज़ए रसूल स0 को बड़ा बुत खाना कहा है अब्दुल वहाब ने, जिससे निकला है मज़हबे वहाबी।

(इरशादुनईम लेदफउललईम, मतबूआ लखनऊ, 1317 हि0 पे023)

### हज़रत मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद इकरामुद्दीन मरहूम:-

वाज़ेह (स्पष्ट) हो कि इस किस्म के मरसिए जिनका ज़िक्र ऊपर हो चुका है उनका कहना और पढ़ना बिलइत्तिफ़ाक़ (सर्वसम्मति से) जायज़ है।

(सआदतुल कौनैन, पे0 137)

### (बक़िया पेज नं0 25 का.....)

जो ईश्वर को पहचानते हैं उसे उसकी प्रसन्नता से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं प्यारी होती।

सृष्टा ने अन्धकार को दूर करने के लिए प्रकाश बनाया जैसे-संसार को रात में चाँद और दिन में सूरज से प्रकाशमान किया अब यहीं से सिद्ध होता है कि संसार की देखने समझने के लिए प्रकाश आवश्यक है प्रकाश भी एक नहीं दो—“बसारत और बसीरत” यअ्नी “नेत्र ज्योति और आन्तरिक ज्योति”। अन्धकार को दूर करने के लिए प्रकाश की ज़रूरत होती है और यह ज़रूरत अन्धकार के अनुपात से ही होती है। और मन का अंधकार आन्तरिक प्रकाश (बसीरत) से दूर होता है। हज़रत इब्राहीम (अ0) ने अपने बेटे की कुर्बानी देकर दो बातों को सिद्ध किया ! पहली बात यह कि ईश्वर से प्रेम करने वाले उसकी प्रसन्नता के लिए अपनी प्यारी वस्तु को भी बलिदान कर देते हैं और दूसरी बात यह है कि कुर्बानी देने वाला अमर हो जाता है।

जहाँ अत्याचार का अन्धकार फैलता है वहाँ बलिदान का प्रकाश फैल कर उस अन्धकार को दूर कर देता है। ऊपर जितनी भी कुर्बानियों के प्रति लिखा गया वे सब व्यक्तिगत थीं और अब अन्त में उस सामूहिक कुर्बानी को लिख दूँ जिसके बिना कुर्बानी का इतिहास पूरा हो सकता ही नहीं और वह कुर्बानी थी कर्बला के “बहत्तर शहीदों” की।

### (बक़िया पेज नं0 23 का.....)

का कारनामा इतना महान श्रेष्ठ एवं उच्च कोटि का है कि प्रत्येक मोहर्रम में उसकी याद इतने बड़े पैमाने पर की जाती है कि संसार में किसी अन्य महान पुरुष या महात्मा की याद इतने बड़े पैमाने पर नहीं की जाती। कुछ लोगों का मत है कि दो सम्राटों में युद्ध हुआ था एक विजयी हुआ और दूसरा पराजित, परन्तु इमाम हुसैन का यज़ीद से युद्ध किसी साम्राज्य के लिए नहीं था वरन आदर्शों एवं सिद्धान्तों के लिए युद्ध था यही कारण है कि संसार में साम्राज्यों के लिए अनेकों युद्ध हुए जिनको इतिहास ने तो याद रखा, परन्तु याद नहीं मनायी जाती परन्तु करबला का यह महान युद्ध सदैव याद किया जाता रहेगा।

### क़तआत

शौदाए अहलेबैत विश्वनाथ प्रसाद माथुर लखनवी

अगर ग़म और ग़मख़्तवारी ने होती  
हुसैन इतनी तो बेदारी न होती  
समझता कौन मफ़हूमे शहादत  
अगर तेरी अज़ादारी न होती

ज़मीं पे अर्श के जल्वे दिखाए जाती है  
ख़ेज़ां बहार को दिल से लगाए जाती है  
ज़ियाएं हक़ की नज़र आ रही हैं बादे हुसैन  
चराग़ बुझ गया लौ जगमगाए जाती है

सेबातो अज़म है क्या जाह और हशम क्या है  
जो दिल के ख़ून में शामिल हुआ वह ग़म क्या है  
तबर्कुकाते पयम्बर में ये भी शामिल है  
मैं क्या बताऊँ कि अब्बास का अलम क्या है

# मजालिसे अज़ा और फ़राइज़े अज़ादारी

ख़तीबे अकबर लिसानुश शोअरा मौलाना सय्यद औलाद हुसैन शाएर इजतेहादी

इस बर्रे सगीर में अज़ादारी ने मानवी एतेबार से सिर्फ़ तरक्की ही नहीं की बल्कि इस सर ज़मीन ने अज़ादारी को अपना लिया इसमें इबतेदा अन (शुरू में) तो अन्दाज़े बयान तकलीदी रहा। लेकिन बाद में तकलीद में भी तरमीम की गई, वह सिनफ़ बिल्कुल ही जुदा हो गई।

कहते हैं कि मरसिए का आगाज़ शहादते हाबील और मरसिय-ए-हज़रत आदम से हुआ। और मरसिया गोई का पहला शरफ़ ज़बाने सुरयानी को हासिल हुआ है। यारब बिन कहतान ने इसका अरबी में तरजुमा किया।

इस बयान से कम से कम मरसिये की क़दामत पर रोनी पड़ती है। और ये मुताबेक़त भी तअज्जुब खेज़ है कि सुरयानी के बाद दूसरी ज़बान जिसका आगाज़ मरसिए से होता है वह हमारी उर्दू है और अरब के बादशाह यारब बिन कहतान की जगह दक्कन के बादशाह कुतुबशाह इसके मूजिद हैं।

मुल्क में मुद्दतों यह ख़याल चक्कर लगाता रहा है कि अकबर के उर्दूए मुअल्ला(छावनी)के मुख़तलिफ़ुल अलसना सिपाहियों के मेल-जोल ने उर्दू की ताज़ा ज़बान पैदा की, जो अपनी तालीम व इफ़हाम में सबके लिए यकसानियत रखती है। मगर हमको हैरत होती है जब हम गुज़िश्ता दो अज़ीमुश शान लड़ाईयों में मगरिब व मशरिक़ जुनूब व शिमाल के हर मुल्क और हर ज़बान बोलने वालों को यकज़ा देखते हैं, और यह मुख़तलिफ़ ज़बानें बोलने वाले पांच-पांच छः-छः बरस तक यकज़ा रहने और आपस में इज़हारे मतलब करने पर मजबूर भी होते हैं, मगर किसी नई ज़बान की ईजाद नहीं होती।

हाँ मुशाहिदा यह बताता है कि जो अन पढ़

हिन्दुस्तानी यहाँ से जाते हैं, वह अंग्रेज़ी के मजरूह टूटे-फूटे अलफ़ज़ याद करके वापस होते हैं।

हमको उर्दू की इबतेदा के बाद उसके इरतेक़ाई नुक़ते पर पहुंचने में भी ग़ज़ल या मसनवी या कसीदे या और कोई सिनफ़ ऐसी नज़र नहीं आती जो दूसरी तरक्की याफ़ता ज़बानों के मुक़ाबिल में ला सके।

बकौल मौलाना शिबली अगर अनीस के मरसिए न होते तो उर्दू दूसरी ज़बानों के मुक़ाबिल न होती। यानी उर्दू की इबतेदा और इन्तेहा मरसिया है। अगर यह हकीक़त है, तो हमको सोचना पड़ेगा कि उर्दू लशकर की तख़लीक़ है या अज़ादारी की तबलीगी ज़रूरत ने इस ज़बान की ईजाद की। यह बहस बहुत तवील होगी अगर हम यह साबित करें कि उर्दू सिर्फ़ अज़ादारिए हुसैन(अ.) की तख़लीकी ताक़त का करिश्मा है, क्योंकि इस ज़बान में इस के मुस्तलेहात हैं, इसके मुहावरात में ऐसे अमसला, ऐसे अस्मा मौजूद हैं जो शिया ज़बान के सिवा दूसरे के मुंह पर खप नहीं सकते।

हमको ज़बाने उर्दू के मुतालिफ़ इतना ही कहना है कि जितना इसका तालुक़ अज़ादारी से है। यह सच है कि उर्दू शेअरा 99 फ़ीसद शिया थे। आपकी नज़रे इन्तेखाब जिसको भी चुनेगी वह शिया ही होगा।

मीर तकी मीर, मिर्ज़ा सौदा, असदुल्लाह ख़ां ग़ालिब, ख़ाजा मीर दर्द, मुसहफ़ी, असीर, नासिख़, आतिश और वज़ीर, सबा, रन्द नज़ीर अकबराबादी। यह सब शिया थे, और हर शिया ग़ज़ल गो ने मरसिया या नौहा ज़रूर कहा है।

सौदा और मीर तकी मीर के कुल्लियात मुलाहेज़ा



हों, इस तरह उर्दू का वुसती (दरमियानी) दौर भी मरसिये से लबरेज़ नज़र आएगा। ग़ालिब मरहूम मुनसिफ़ मिज़ाज़ थे, उन्होंने मीर अनीस के मुकाबिल अपनी शिकस्त को ज़मीर की फ़तहा समझ कर, चन्द बन्द कह कर फाड़ डाले मगर मरसिया ज़रूर कहा। इस तरह ज़बाने उर्दू का हर दौर मरसिए के लिए बा ज़ाब्ता तौर पर वक्फ़ रहा।

जिसके बाद हम ये कह सकते हैं कि उर्दू मरसिए ही के लिए पैदा की गई थी। इससे भी इन्कार नहीं है कि अज़ादारी के रिवाज में ईरानियों ने ज़बर्दस्त हिस्सा लिया है। और ईरानी यूं तो तैमूर और बाबर के अहद से हिन्दुस्तान पर मुसल्लत थे, मगर उनका बड़ा जमाओ दकन के शिया बादशाहों के दरबारों में रहा। और उर्दू भी दक्कन ही में पैदा हुई इस लिए उर्दू के आगाज़ में ऐसे मुरक्कब अस्मा ज़ियादा मिलते हैं जिनमें अरबी, फ़ारसी की बैरुनी आमोज़िश है। मसलन आशूर ख़ाने का समझना एक हिन्दी के लिए आसान न था। इस लिए उसको उर्दू बनाना पड़ा। और रफ़ता-रफ़ता आशूर ख़ाना इमाम बाड़ा हो गया।

फ़ितरी ज़ुरअत व शुजाअत को समझाने के लिए दकन में तसावीर तक से काम लिया गया है। आप जिस दीवार पर शेर की तस्वीर बनी हुई देखेंगे, समझ लें कि इसकातालुक आशूर ख़ाने से है यानी एक ईरानी मुबल्लिग़ माफ़िज़ ज़मीर को मुल्की असहाब के ज़ेहन नशीन करने के लिए बे ताब नज़र आता है। और आखिरी सूरत यह हुई कि कुछ अपने अलफ़ाज़ देकर कुछ मक़ामी अलफ़ाज़ लिए। और उन सबने मिलकर उर्दू की सूरत इख़तेयार की।

उर्दू ने फ़ारसी या अरबी से मरसिए का चलन तो लिया मगर अहद ब अहद इसमें इतने इज़ाफ़े किए गए कि अब मरसिए को ख़ास उर्दू अदब की सिन्फ़ कहा जाए।

मुबल्लेगीने अज़ादारी ने कमाल किया है कि अपनी तबलीग़ में हर वह रास्ता इख़तेयार किया है जो मज़ाके मुल्क ने दिलों तक सीधा पहुंचा दिया था। उन्होंने इस तबलीक़ में कहीं-कहीं शरीअत से भी तजावुज़ किया और उलमा ने अस्ल मक़सद की बरतरी व ज़रूरत को महसूस करते हुए ग़ज़ बसर से काम लिया।

उन्हीं मुबल्लेगीन ने बाजों पर क़ब्ज़ा किया। यहाँ तक कि शादी के बाजों से मातमी बाजों के टुकड़े अलग कर दिए। मातमी नक्कारों की आवाज़ में आप अदना सी तवज्जो में इमतेयाज़ कर लेंगे। सवाल जावाज़ और अदमे जवाज़ का नहीं, यह देखना है कि जाहिलों में और खुसूसन देहातों ने जहां अलिफ़ ने अपनी शमा न दिखाई थी, और बे ने अपना दीपक न जलाया था, नामे हुसैन (अ) क्योंकर पहुंचा दिया? यकीनन उर्दू उस वक़्त तक पैदा नहीं हुई थी, जब बाजों से अज़ादारी को और अवाम को अज़ादारी की तरफ़ मुतावज्जे किया जाता था। और इसी इज़हारे वाक़िए के लिए अज़ादारी में लड़ाई के करतब शरीक किए गए जिसपर मुहर्रम के सिपाहियों का नारा “या हुसैन” शाहिद है।

जब उर्दू पैदा हुई तो उसमें दो मिसरों के हल्के नौहे नज़्म किए गए। उनमें मज़हब के खुसूसी मसएल से किनारा कशी इख़तेयार की गई।

सिर्फ़ मज़लूमियत ही मज़लूमियत थी, तबलीग़ में तरवीज भी थी। अज़ादारी को मुनाज़िरे से बचाकर ख़वेश व दरवेश दोनों को साथ लेना था।

जब नौहे मजालिस में मक़बूल हो चुके तो निज़ामी वग़ैरा के अन्दाज़ से सलाम की सिनफ़ पैदा की गई जो नौहे की तरह ख़ास मज़ामीन से ख़ाली न थी, आगाज़ में सलामी और मुजरई के अलफ़ाज़ मिलाकर उसको मोतक़ेदीन के तकलीदी लिबास में रखा गया। मगर अब यह सिनफ़ बे नक़ाब हो चुकी है। और बग़ैर सलामी और मुजरई के हर किस्म के मज़ामीन जो मज़हबी होते हैं पाए जाते

हैं।

सलाम और नौहे में हकीकी फर्क व इमतिआज़ है। मरसिया भी इब्तेदा में मुसद्दस पर मुनहसिर न था। मीर मुज़फ़्फ़र हुसैन साहब ज़मीर ने इसको न सिर्फ़ मुसद्दस किया बल्कि इसके सारे हुदूद मुक़रर कर दिए। जिनको मिर्ज़ा दबीर और मीर अनीस ने इन्तेहाई नुक़ते तक तरक्की दी। फिर भी हम देखते हैं कि मिर्ज़ा दबीर और मीर अनीस मरहूम ने अपना जोरे तबअ सिर्फ़ दो बहरों तक महदूद रखीं इसके यह माना नहीं कि उन्होंने मख़तस या रमल में नहीं कहा मगर हक़ यह है कि उन आखिरी बहरों को मीर नफीस ख़लफ़े मीर अनीस व मिर्ज़ा औज़ ख़लफ़े मिर्ज़ा दबीर मरहूम ने मरसिए में दाख़िल किया। उन दोनों बुजुर्गों का ज़ियादा तर कलाम आखिरूज़ ज़िक्र बहरों में है जबकि मिर्ज़ा दबीर और मीर अनीस मरहूम का ज़ियादा हिस्स-ए-कलाम और मशहूर मरासी मुज़ारे या हर्ज में हैं:

जब क़ता की मसाफ़त शबे आफ़ताब ने  
जब करबला में दाख़िलए शाहे दीं हुआ  
जब नौ जवाँ पिसर शहे दीं से जुदा हुआ  
जब हुर को मिला खुलअते पुर खूने शहादत  
कनआने मुहम्मद के हसीनों का सफ़र है  
आपने ग़ौर नहीं फ़रमाया। इन बहरों के इज़ाफ़े  
ने और इस फ़न को तरक्की दी। कहा जाता है  
कि मिर्ज़ा दबीर मरहूम का तरर्ज अदा बहुत  
सादा था, जबकि मीर अनीस का पढ़ना एक ठाट  
रख़ता था।

मरसिए का यह वह वक़्त था। जब सिर्फ़ कलाम  
ही नहीं अन्दाज़ व अदा से भी उसको पुर तासीर  
और बलन्द किया जा रहा था।

मीर अनीस साहब मरहूम और शायद उनसे भी  
पहले पढ़ने का अन्दाज़ पैदा हो चुका था। मगर  
इसमें इतनी मतानत, इतन संजीदगी थी कि  
आखिरे कार उसको ख़्वांदगी का अन्दाज़ कहा  
गया।

मीर अनीस मरहूम एक मजलिस में रौनक़ अफ़रोज़  
थे और आपकी औलाद में एक बुजुर्ग पढ़ रहे थे।  
वह उठा परदए दर और वह हुसैन आए पढ़ने  
वाले ने एक हाथ फैलाकर और कलेमे की उंगली  
को मुताहरिक करते हुए वह का इशारा पूरा  
किया। मगर इत्तेफ़ाक़ से हाथ फैलाने में गरदन  
में इतना बे ज़रूरत ख़म पैदा हुआ कि सर शाने  
से मिल गया।

भला मीर साहब की नज़ाकते मिज़ाज कब गवारा  
करती ज़ेरे मिम्बर ही से फ़रमाया यह कांधी देना  
कहां से सीखा है।

रमल और मख़तस यह दोनों बहरें ठाट के मिसरे  
ज़ियादा निकालती हैं। इन बहरों ने मुताख़रीन में  
मरजइयत हासिल की।

मीर नफीस मरहूम ने औन व मुहम्मद के हाल में  
मारकए जंग नज़्म करते हुए फ़ौज की पस्पाई  
और ओन व मुहम्मद की फ़तहेमंदी का ज़िक्र  
दोनों की गुफ़्तगू में किया है।

छोटा भाई बड़े भाई से फ़ौजों की कसरत पर  
उनके फ़रार का तज़क़िरा कर रहा है।

उस जगह छुपते हैं लाशों के जहां तोदे हैं  
अम्मा सच कहती थीं भय्या कि बड़े बोदे हैं  
मीर साहब ने पहले तो इस बैत को बहुत  
सीधा-सीधा पढ़ा, कलाम की खुबी ने मजलिस  
को बे चैन कर दिया। और उसके बाद दोबारा  
पढ़ने की फ़रमाईश पर:

उस जगह छुपते थे लाशों के जहाँ तोदे हैं  
हाथ फैलाकर मरसिए की ओट से लोशों के  
तोदे सूरत कशी करते हुए दूसरा मिसरा पढ़ा।  
अम्मा सच कहती थीं भय्या, नर्म और ताना ख़ेज़  
आवाज़ और 'बड़े बोदे हैं' को माथे पर शिकन  
और हाथों को पस्ती की तरफ़ झिटक कर अदा  
किया। मजलिस इस अन्दाज़ पर दोबारा बेचैन  
थी, इस तरह कलाम का असर दोहरा हो जाता  
है।

सोज़ ख़ानी तहत और आगाज़े मजलिस में होती

थी। गोया बलन्द आवाज़ से राह चलतों को आने की दावत दी जाती है। क्योंकि वह साज़ ख़ान था, इस लिए उसको सोज़ ख़ान कहा गया और सोज़ को मिज़ाजे इस्लाम के लिए साज़गार समझा गया।

सोज़ ख़ानी के बड़े-बड़े अहले कमाल हिन्दूस्तान में पैदा हुए, और उन्होंने तबलीगे अज़ादारी में पूरा हिस्सा लिया। ग्वालियार की रियासत की अज़ादारी का आगाज़ एक सोज़ ख़ान ही से होता है जो महाराजा ग्वालियार के यहाँ गाने वालों में मुलाज़िम था।

महाराजा ने उसकी सोज़ ख़ानी से हुसैन(अ.) को पहचाना और फिर इमाम हुसैन(अ.) को शायद खुद भी अज़ादारी फैलानी मकसूद थी, इस लिए चन्द दर चन्द मोजिजे होते गए, आखिर अज़ादारी ग्वालियार में कायम होकर रही।

सोज़ ख़ानी का मूजिद वही तानसेन था जो अकबरी दरबार के नौ रतन में शामिल है। क्योंकि इसी का नवासा खुशहाल ख़ां हैदराबाद की रियासत में मन्सूरुद्दौला का मुलाज़िम था। यही वह खुश हाल ख़ां है जिसकी कमान (फाटक मेहराब दार) कोहे मौला(हैदराबाद) पर आज भी मौजूद है। और इसी के करीब ख़स्ता व शिकस्ता सा उसका मज़ार है।

इस कमान से थोड़े फ़ासले पर माहे लका चन्द उसकी हुसीन व ख़ूब सूरत बेटी एक बाग़ में महवे आराम है जो खुद भी सोज़ ख़ानी में मशहूर थी।

अगर आप हैदराबाद की सोज़ ख़ानी सुनेंगे जो यू. पी. की सोज़ ख़ानी से बिल्कुन अलग और मुख़्तलिफ़ है तो आपको मानना पड़ेगा कि जिसने सोज़ ख़ानी को साज़ से अलग किया है कामिलुल फ़न शख्स था।

यू. पी. की सोज़ ख़ानी को यकीनन गाना नहीं कहा जा सकता और वह इमतियाज़ जो हैदराबादी सोज़ में है। वह यहाँ यू. पी. में नहीं नज़र आता।

सोज़ ख़ानी ख़त्म होने पर मिम्बर पर पेश ख़ानी होती थी इसमें अस्ल जाकिर का कोई शगिर्द या अज़ीज़, रूबाई, सलाम या मरसिए के चन्द बन्द पढ़कर उतर आता था। और मरसिया ख़ान इस पेश ख़ानी से मजलिस का माहौल मालूम कर लेता था।

सोज़ ख़ानी के बाद मरसिया ख़ानी की बारी है। हमने ऐसे भी मरसिया पढ़ने वाले देखे हैं जो बताने की कोशिश में मिम्बर से उतर आते थे। इसी तरह दौरे आखिर में मीर खुशीद हसन उर्फ़ दूल्हा साहब उरुज के पढ़ने का जवाब न था।

वह बलंदी पे सितारा, कि चमकता है अलम इस अन्दाज़ से पढ़ा कि आधी मजलिस खड़ी हो गई

मरसिया ख़ानी के बाद नस्र ख़ानी का दौर था। यह फ़न फ़ारसी से लिया गया है, मगर पढ़ने के अन्दाज़ ने उसको भी हिन्दूस्तानी बना दिया। नस्र ख़ान मिम्बर पर जाकर रूबाई, क़सीदा और मुताफ़रिक् अशआर से अपने कलाम का आगाज़ करता था।

इसके बाद चेहरा शुरू होता था। उसमें फ़ारसी अदब की तकलीद की जाती थी, फिर उर्दू तकरीर मुक़फ़्फ़ा व मुसज्जा शुरू होती थी, जैसा कि उस अहद का मज़ाक़ था, बच्चा-बच्चा फ़ारसी से वाकिफ़ था। फ़सानए अजाएब रजब अली बेग़ सुरूर की नस्र उस नस्र का आला नमूना था।

इस नस्र की खूबी के साथ महल व मौक़े पर अशआर और मरसिये के बन्द इस ठाट से पढ़े जाते थे कि मजलिस बेकरार हो जाती थी।

अहमद हुसैन क़मर, मुंशी अहमद हुसैन जाह(मुसन्नेफीन तिलिस्मे होशरुबा) रामपुर में मुलाज़िम थे। ऐसी-ऐसी मजलिसें पढ़ीं कि नवाब आबिद अली ख़ां मरहूम ने मोमियों से मुंह भर दिया।

एक शख्स मजलिस में बैठा कि क्या मजाल जो

आंख से आंसू निकले। और जाकिर ने मिम्बर पर दावा किया कि आदमी तो क्या चीज़ है पत्थर भी तड़प कर या हुसैन(अ.) कहे, जब मजलिस पढ़कर उतरे तो यह शख्स रोते-रोते बेहोश हो चुका था।

आखिरी दौर में मीर विलायत हुसैन साहब विला मरहूम रामपुर में नरस ख़्वानी करते थे।

नरस ख़्वानी के बाद रौज़ा ख़्वानी थी, उसमें अकसर मुल्ला वायज़ काशिफ़ी की "रौज़तुश शोहादा" फ़ारसी या उर्दू तरजुमे के साथ पढ़ते थे। फिर किताब ख़्वानी होती थी, और यह गोया हमारी मौजूदा जाकिरी और वायज़ी के आगाज़ की सूरत थी।

उसमें बाज़ खुशइलहान मुख़तसर फ़ज़ाएल और फिर मसाएब लहन से पढ़ते थे।

हज़रत बहरूल उलूम मौलाना सय्यद मुहम्मद हुसैन उर्फ़ अल्लन साहब क़िबला मुजतहिद आलल्लाह मक़ामुहू ने जाकिरी के बयान को अतनी वुसअत दी कि उलूम व फ़ुनून भी इस बयान में शामिल हो गए। हज़रत बहरूल उलूम के आखिरी ज़माने में मौलाना मक़बूल अहमद साहब मरहूम ने मुनाज़िरे को आम किया। इसी के साथ ख़तीबे आज़म मौलाना सय्यद सिबते हसन मरहूम और मौलाना मौलवी मुहम्मद रज़ा साहब शम्स आबादी आलल्लाह मक़ामुहू ने इस फ़ने वायज़ी को मेराजे कमाल तक पहुंचा दिया। किताब ख़्वानी के बाद वाक़िया ख़्वानी होती थी, जाकिर मिम्बर पर लहजे के साथ वाक़िया बयान करता था और ज़ेरे मिम्बर उसी के साथी मौजूद होते थे। जाकिर वाक़िया बयान करते हुए एक मिस्रा पढ़ता था। ज़ेरे मिम्बर बैठे हुए लोग उस मिस्रे को दोराते थे। वाक़िये के बाद नौहा ख़्वानी होती थी, जो लखनऊ में एक अन्जुमन चक चकियों पर खड़े होकर नौहा पढ़ती थी।

आखिरी ज़माने में चक चकी की जगह हाथ से सीने पर ज़र्ब लगाई जाने लगी और इस अन्दाज़

का मातम हो गया जो आज तक जारी है।

मातम या नौहा ख़्वानी के बाद फिर तरवीह थी, जिसमें नज़्मन आइम्माए मासूमीन के वास्ते से अहले मजलिस व बानिए मजलिस कि लिए दुआ होती थी, आखिर में सूरए फ़ातिहा पढ़वाया जाता था। और मजलिसे अज़ा ख़त्म होती थी।

अब यह तमाम फ़ुनून ख़त्म हो चुके हैं, सिर्फ़ वाज़ व मातम, सोज़ ख़्वानी और नौहा ख़्वानी बाक़ी है। जो अपनी तारीख़ी और रिवायती हैसियत से जारी है।

### मिल्लते नाकाम

**शाएरे अहलेबैत अल्लामा नज़्म आफ़न्दी**

जलवागरे करबला तेरा ही ये काम है  
आज भी इन्सानियत आज भी इस्लाम है  
कल की तेरी बेकसी आज हुई बारवर  
खासए रब्बे उला तेरी विला आम है  
हिन्द में दस रोज़ को आ के ये मंज़र तो देख  
सुब्ह तेरी सुब्ह है शाम तेरी तेरी शाम है  
प्यास के मारे हुए खून में डूबे हुए  
दिल में तेरी आरजू लब पे तेरा नाम है  
अश्के आज़ादार हैं मरहमे ज़ख्मे जिगर  
बाँके सिपाही बता अब तो कुछ आराम है  
क़ब्रे पयम्बर से दूर किसने सुलाया तुझे  
उसको न आएगी नींद, जिसका गुलअन्दांम है  
ख़ल्क की इस्लाह को वो तेरी कुरबानियाँ  
आज वो रूहे अमल मक़सदे अक़वाम है  
आलमे इमकाँ में है आज वो मिल्लत बलन्द  
दिल से लगाए हुए जो तेरा पैग़ाम है  
चैन न देंगी तुझे क़ौम की नाकामियाँ  
मुसलहे आज़म के लाल तुझसे अभी काम है  
तेरी नज़र के निसार, एक नज़र देख ले  
रू-ब-ज़वाल आज फिर मिल्लते नाकाम है  
शिया व सुन्नी में है आज नया इफ़तेराक़  
आज तबाही में फिर क़श्ति-ए-इस्लाम है

## सातवाँ बाब

### बनी उमय्या का एकतेदार और उनकी सियासी रविश

बनी उमय्या और इस तरह के अक्सर लोग जो दबदबा और शिकोह (शानो शौकत) से मुतअस्सिर होकर मुसलमान हुए थे उनकी नफ़सीयाती कैफ़ियत वही थी जो हर दबी हुई और शिकस्त खुर्दा (हारी हुई) कौम की होती है यानी नफ़रत, दुश्मनी, गुस्सा, जज़्ब-ए-इन्तेक़ाम (बदले की भावना) और उसके साथ साथ डर जिसके नतीजे में वह खुल कर अपनी अदावत का इज़हार तो न कर सकते थे मगर बराबर मौक़े के मुन्तज़िर थे कि किस तरह हम इस्लाम को नुक़सान पहुँचायें और अगर उसको ख़त्म न कर सकें तो कम अज़ कम उन खुसूसियाते इम्तेयाज़ी को तब्दील कर दें जो उसने कायम किये हैं और जिनसे हमारे एकतेदार को सदमा पहुँचा है और इस्लाम के पर्दे में ही सही उन हुदूद व इम्तेयाज़ात को कायम कर दें जो इस्लाम के पहले अरब में कायम थे। उन्होंने उसकी तय्यारी तो रसूल<sup>स०अ०</sup> के ज़माने ही से शुरू कर दी थी मगर पैग़म्बरे इस्लाम<sup>स०अ०</sup> की ज़िन्दगी में उनके इस मक्सद की तक्मील मुशकिल थी। पैग़म्बर ने उनके दिलों को इस्लाम की तरफ़ माएल करने के वास्ते हर तरह कोशिश की मगर उनके जज़्बात वही रहे और एक ज़रा इस्लाम पर कोई मुसीबत पड़ती तो उनके चेहरे खुशी से खिल जाते और कभी जज़्बाते दिली ज़बान पर आ जाते थे। चुनानचे जंगे हुनैन में जब मादूदे चन्द के सिवा बाकी

तमाम मुसलमान मैदाने जंग से रू-ब-फ़रार हुए (भागे) तो अबू सुफ़ियान ने कहा: बस अब यह समन्दर तक भागते चले जायेंगे। और एक नौ मुस्लिम ने कहा। बस अब जादू ख़त्म हो गया।<sup>1</sup> वफ़ाते रसूल<sup>स०अ०</sup> के बाद अबू सुफ़ियान ने इस्लाम पर हमला करने की पहली कोशिश वह की जिसका तज़केरा पहले हो चुका है कि हज़रत अली बिन अबी तालिब<sup>अ०स०</sup> के पास आ कर आपको तलवार उठाने पर आम़ादा करना चाहा। यकीनन उस मौक़े पर अगर कोई जज़्बाती इन्सान होता तो अबू सुफ़ियान का यह हर्बा इतना कारी साबित होता कि इस्लाम की बुनियाद हिल जाती। मुसलमान उसी वक़्त ख़ाना जंगी में मुबतिला हो जाते और इस्लाम का शीराज़ा दरहम बरहम हो जाता मगर वह नूरे इलाही से देखने वाले नब्बाज़े फ़ितरत (इस्लाम की नब्ज़ पर कुदरती महारत रखने वाले) अली थे जिन्होंने ने मुखातिब के मक्सद को ताड़ लिया और बावजूदेकि ख़िलाफ़त का मुस्तहक़ वह सिर्फ़ अपने को मसझते थे। फिर भी अबू सुफ़ियान को डाँट कर जवाब दिया कि तुम हमेशा इस्लाम और अहले इस्लाम के दुश्मन रहे हो। जब उधर से मायूसी हुई तब अबू सुफ़ियान ने चोला बदला। उधर जा कर मिल गए और इस रविश में कामयाबी भी हो गई। इस तरह कि सन 13 हिजरी के आगाज़ में ख़लीफ़-ए-अव्वल अबू बकर ने मुल्के शाम पर फ़ौज कशी का बन्दोबस्त किया और सात हज़ार के लश्कर के साथ यज़ीद बिन अबी

<sup>1</sup>तबरी जि/6, पेज/128



सुफियान को रवाना किया गया।<sup>2</sup> फौज के दूसरे हिस्से पर अब उबैद-ए-जरीह को मुकर्रर किया गया और यजीद बिन अबी सुफियान के साथ सुहैल बिन अम्र और दीगर 87 शेरखे कुरैश (बुजुरगाने कुरैश) को मुशीरे कार बनाया गया और उसके बाद जब कुछ और फौज जमा हुई तो उस पर मुआविया इब्ने अबू सुफियान को अफसर मुकर्रर करके यजीद के पास रवाना किया गया।<sup>3</sup>

मजमूअन यह सत्ताईस हजार की जमइयत हो गई। उन लोगों की इमदाद के लिये खालिद बिन वलीद को हुक्म दिया गया कि वह अपनी फौज लेकर इराक से पहुँच जायें। चुनानचे 9 हजार फौज लेकर वह पहुँचे। इस तरह मुसलमानों का छत्तीस हजार का लश्कर हो गया। उसी वक्त इन उमरा (सरदारों रईसों) में से हर एक को एक जगह की हुक्मत के लिये नामजद भी कर दिया गया था। चुनानचे अबू उबैदा जर्हाह को हमस, शीरजील बिन हसना को शर्क उरदन, अम्र बिन आस और अल्कमा बिन मुजज़र को फिलिस्तीन और यजीद बिन अबी सुफियान को दमिश्क का हाकिम करार दिया गया।<sup>4</sup>

इस फौज में खुद अबू सुफियान फौज के सरदारों का दिल बहलाने के लिये किस्सा गोई की खिदमत अन्जाम देते थे।<sup>5</sup>

अबू सुफियान की औलाद में से यजीद और मुआविया के अलावा उनकी एक बहन जुवेरिया बन्ते अबू सुफियान भी अपने शौहर के साथ मौजूद थीं और उन्होंने जंग में शिरकत भी की।<sup>6</sup>

<sup>2</sup>तबरी जि/4, पेज/28

<sup>3</sup>तबरी जि/4, पेज/30

<sup>4</sup>तबरी जि/4, पेज/32

<sup>5</sup>तबरी जि/4, पेज/34

<sup>6</sup>तबरी जि/4, पेज/36

इस दौरान में खलीफ़-ए अब्बल का इन्तेकाल हो गया लेकिन मुल्के शाम में लड़ाईयाँ होती रहीं। यहाँ तक कि रजब सन 14 हिजरी में शहरे दमिश्क फ़तह हुआ और हस्बे करारदादे साबिक (पहले की तरह) यजीद बिन अबी सुफियान वहाँ के हाकिम हुए।<sup>7</sup>उकसे बाद तदरीजन (एक के बाद एक) शाम के दूसरे शहर भी फ़तह हुए।

सन 18 हिजरी के ताऊन (Plage की बीमारी) में अबू उबैदा और यजीद बिन अबी सुफियान दोनों का इन्तेकाल हो गया।<sup>8</sup>

अबू सुफियान उस वक्त मदीने में थे। उनको बेटे की इतनी फ़िक्र न थी जितनी कि षाम के मुल्क की। चुनानचे खलीफ़-ए-दोम (दूसरे) ने जब उन्हें बुला कर यजीद के मरने की इत्तेलाअ दी तो उन्होंने फौरन यह सवाल किया कि आपने उसकी जगह पर किसे मुकर्रर किया? जब मालूम हुआ कि मुआविया को वहाँ का हाकिम बना दिया गया तो वह खुश हो गए।<sup>9</sup>

अब मुआविया इब्ने अबी सुफियान को दमिश्क और उसके मुज़ाफ़ात (आस पास) और शरजील बिन हसना को शर्क उरदन (पुर्वी जार्दन) और उसके मुज़ाफ़ात की हुक्मत मिली।<sup>10</sup>उसके कुछ अरसे के बाद शर्क उरदन की हुक्मत भी मुआविया ही को मिल गई।<sup>11</sup>

उस दौर में अबू सुफियान वगैरह ने खूब ही फ़ाएदे हासिल किये। यहाँ तक कि हिन्दा मादरे मुआविया को जिन्हें अबू सुफियान ने अब तलाक़ दे दी थी मरकज़ी हुक्मत के बैतुल माल से चार हजार दिरहम की रक़म

<sup>7</sup>तबरी जि/4, पेज/55-59

<sup>8</sup>तबरी जि/4, पेज/302

<sup>9</sup>तबरी जि/5, पेज/69

<sup>10</sup>तबरी जि/4, पेज/202

<sup>11</sup>तबरी जि/5, पेज/69

कर्ज दी गई जिससे उन्होंने तिजारत शुरू की और नफ़-ए-ख़तीर (बहुत ज़्यादा फ़ाएदा) हासिल किया और अबू सुफ़ियान दमिशक़ गए तो उन्हें एक दफ़ा सौ अशरफ़ियाँ ब-तौरे परवरिश हासिल हुईं।<sup>12</sup>

हालाँकि उनके जज़्बात इस्लाम के मुतअल्लिक़ अब भी ख़ैर ख़्वाही के न थे। चुनानचे जंगे यरमूक़ में जबकि मुसलमानों का मुकाबला सलतनते रोम के लश्कर से था और मारिका-ए-कारज़ार गर्म था उस वक़्त अबू सुफ़ियान दूर से खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था। जब रोमियों को ग़ल्बा हासिल होते नज़र आता तो कहता था “शाबाश ऐ मुल्के रोम के बहादुरों” और जब मुसलमानों को ज़रा तक़वियत हासिल होती थी तो अबू सुफ़ियान की ज़बान से हसरतो यास के साथ यह शेअर निकलता था।

#### **वबनुल असफ़रुल मुलूकिन मुलूक अररूमो लमयबुक़ मिनहुम मज़कूर**

मतलब यह था कि “हाय अफ़सोस सलतनते रोम के पुर शौकत बादशाहों का नाम मिटते हुए नज़र आता है।” अब्दुल्लाह बिन जुबैर ने इस वाक़ये का अपनी आँखों से मुशाहदा किया और अपने बाप जुबैर से बयान किया। उस वक़्त कि जब मुसलमानों को कामिल तौर पर फ़तह हासिल हो चुकी थी। जुबैर ने कहा। खुदा उसे ग़ारत करे। यह निफ़ाक़ से बाज़ न आयेगा। क्या हम उसके लिये रोमियों से बेहतर नहीं हैं।<sup>13</sup>

उसके बाद सन 23 हिजरी में जब उस्मान ख़लीफ़ा हुए तो चूँकि वह ख़ानदाने बनी उमय्या के एक फ़र्द थे। अबू सुफ़ियान वग़ैरह समझे कि अब हमारी बन आई। दिली जज़्बात इतनी कुव्वत के साथ उबले कि ताब न ही।

<sup>12</sup>तबरी जि/5, पेज/30

<sup>13</sup>इस्तीआब

अबू सुफ़ियान उनके पास आया। वह उस वक़्त बहुत बूढ़ा था और आँखों से माज़ूर हो चुका था। उसने कहा बड़ी मुद्दत के इन्तेज़ार के बाद अब यह ख़िलाफ़त तुम तक पहुँची है। अब उसको गेंद की तरह अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ गर्दिश दो और बनी उमय्या के ज़रिये से उसकी बुनियादों को मज़बूत करो। इसलिये कि जो कुछ है वह यही दुनयवी सलतनत। रह गया जन्नत व दोज़ख़ उसको मैं कुछ समझता नहीं।<sup>14</sup>

चुनानचे अबू सुफ़ियान के ख़ानदान वालों ने इस ख़िलाफ़त से ख़ूब फ़ायदा उठाया और कोई शक़ नहीं कि अबू सुफ़ियान ने अपने दुनयवी ख़्वाबों की ताबीर अपनी ज़िन्दगी में अपनी आँखों से देख ली। सन 31 हिजरी तक दमिशक़ और शर्क़ उरदन के साथ साथ हमस, क़न्सरीन और फ़िलिस्तीन भी मुआविया के ज़ेरे नगीन हो गए और वह बिला षिरकते ग़ैरे पूरे मुल्क पर काबिज़ करार दे दिये गए।<sup>15</sup>

इसी सन 31 हिजरी में अबू सुफ़ियान बिन हर्ब 88 बरस की उम्र में रहे सिपारे आलमे आख़िरत हुए। (यानी मौत हो गई।)<sup>16</sup>

मगर वह मशवरा जो उन्होंने ख़लीफ़-ए-सोम को दे दिया था वही उनके बाद उनकी जान जाने का बाइस हुआ। चुनानचे हज़रत अली बिन अबी तालिब<sup>अ०स०</sup> ने अपनी सबसे पहली मुलाक़ात में जो इस्लाहे हालात के लिये ख़लीफ़-ए-सालिस से की थी उनसे साफ़ कह दिया था कि आप अपने कराबत दारों के साथ ग़ैर मामूली मुराआतें (मेहरबानियाँ) बरत्ते हैं। उनकी ग़लतियों से चश्मपोशी करते हैं। इन्तेहा यह है कि मुआविया बग़ैर आपकी मर्ज़ी के जो चाहता है करता है और लोगों से

<sup>14</sup>इस्तीआब <sup>15</sup>तबरी जि/5, पेज/69

<sup>16</sup>तबरी जि/5, पेज/79

उसके बाद यही अम्र बिन आस मुआविया के दस्ते रास्त बने। और बड़े मनासिब हासिल किये। उन्होंने खुद एक मौके पर मुआविया से साफ़ कह दिया कि अगर हक्कानियत सामने होती तो हम तुम्हारा साथ ही क्यों देते। अली का साथ न देते जिनके इस्लामी ख़िदमात फ़ज़ीलत और रसूल<sup>सोअो</sup> से क़राबत सबको मालूम हैं। मगर हमारे पेशे नज़र तो दुनिया है। इसी लिये तुम्हारा साथ दे रहे हैं। <sup>21</sup>

आले अबू सुफियान ने शाम में हुकूमत कायम करने के बाद इब्लेदा ही से अपनी सियासी रविष षहाना रखी। कोई सय्याह अगर ममालिके इस्लामिया का सफ़र करके इस्लामी सादगी और मसावात की मिसालें देख चुका होता और फिर शाम जाकर वहाँ के तुज्को एहतेशाफ (शानो शौकत) का मुशाहदा करता तो वह हैरत व इस्तेजाब (तअज्जुब) की एक दुनिया में चक्कर लगाने लगता। वह सादगी जो इस्लामी जिन्दगी का तुर्रा—ए इम्तेयाज़ (खुसूसियत) थी वहाँ नामो निशान को भी न थी। बल्कि उसके बजाये मुलूकाना अज़मतो जलालत के मुज़ाहरात पूरी ताक़त के साथ नज़र आते थे। देखने वालों ने देखा और पैगम्बरे इस्लाम<sup>स०अ०</sup> के जारी किये हुए तर्जे जिन्दगी से मानूस बाज़ सहाबा को अन्देशा हुआ कि इस तरह इस्लाम के उसूल, कद्रो कीमत और मेयारे अज़मत जो उसने बड़ी कोशिश से दुनयवी जाह व शौकत की कद्रो कीमत को मिटा कर कायम किया था फ़ना हो जायेगा। चुनौनचे मुआविया ने पानी पीने के प्याले सोने के ज़्यादा वज़न पर फ़रोख़्त किये तो अबू दरदा सहाबी ने मना किया और कहा, हमने रसूल अल्लाह<sup>स०अ०</sup> से सुना है कि ज़्यादा वज़न पर ख़रीद मना है। मुआविया ने कहा, मेरे नज़दीक तो इसमें कोई ख़राबी नहीं है। यह सुनकर अबू दरदा ने कहा: क्या ख़ूब! मैं तो रसूल अल्लाह<sup>स०अ०</sup> का हुक्म बयान कर रहा हूँ और तुम उस पर अपनी राय ज़ाहिर कर रहे हो। मैं ऐसे मक़ाम पर जहाँ तुम हो नहीं रहूँगा।

दरे हुसैन पे आते हैं हर ख्याल के लोग  
ये इत्तेहाद का मरकज़ है आदमी के लिए  
महदी नज़्मी इज्तेहादी

<sup>21</sup>(1) (1. तबरी जि/5. पेज/235

## मुख्य समाचार

### ख़ानवाद—ए—इज्तिहाद की एक बुज़ुर्ग ख़ातून मोहतरमा मरज़िया शम्सी ज़ायरा की रहेलत

3 अगस्त 2017ई0 मुताबिक 10 ज़ीक़अदा 1438 हि0(जुमेरात)की सुबह ज़ाकिरे शामे ग़रीबों उम्दतुल उलमा आयतुल्लाह सै0 कल्बे हुसैन नक़वी अख़तर की दुख़तरे नेक अख़तर और अलम बरदारे इत्तिहादे बैनुल मुस्लेमीन सफ़वतुल उलमा मौलाना सै0 कल्बे आबिद नक़वी रहमत मआब व डॉक्टर मौलाना सै0 कल्बे सादिक़ साहब की बहेन, जनाब शम्सुल हसन ताज साहब की अहलिया और शकील हसन शम्सी साहब की वालिद—ए—माजिदा नीज़ कायदे मिल्लत मौलाना सै0 कल्बे जवाद नक़वी साहब की फुफी मोहतरमा मरज़िया शम्सी ज़ायरा ने इस दारे फ़ानी से दारे बका की जानिब रहेलत फ़रमाई। मरहूमा तक़रीबन 82 साल की थीं और इधर चंद दिनों से अलील थीं। मरहूमा को इल्म व अदब से ख़ास शग़फ़ था। उन्होंने ख़ानवाद—ए—इज्तिहाद की नौहा निगार शाइरात के तज़किरे और उनके नमून—ए—कलाम पर मुशतमिल एक किताब भी तासीरे अज़ा के नाम से तालीफ़ फ़रमाई थी जो नूरे हिदायत फ़ाउंडेशन लखनऊ से जनवरी 2011ई0 में शाए भी हो चुकी है। इसके अलावा मरहूमा के नौहों और सलामों के दो मजमूए “कलामे ज़ायरा” और “फुगाने ज़ायरा” भी हैं जो इदारे ही से शाए हुए हैं। मरहूमा की तदफ़ीन उसी रोज़ बादे नमाज़े मग़रिबैन हुसैनिय—ए—गुफ़रान मआब लखनऊ में हुई। नमाज़े जनाज़ा कायदे मिल्लत मौलाना सै0 कल्बे जवाद नक़वी साहब की इक्तिदा में हुई। मरहूमा की मजलिसे सोम 6/अगस्त 2017ई0 मुताबिक 13/ज़ीक़अदा 1438हि0(इतवार)को इमाम बाड़ा गुफ़रान मआब में मुनअकिद हुई। इदारा कारईन से मुलतमिस है कि एक बार सूर—ए—फ़ातेहा और तीन बार सूर—ए—तौहीद की तिलावत फ़रमाकर मरहूमा को ईसाल फ़रमाएँ।

### इराक़ी जवानों का मूसिल की लाइब्रेरी को किताबों का तोहफ़ा

अहलेबैत न्यूज़ एजेंसी अबना के मुताबिक़ इंसान दुशमन तकफ़ीरी दहशत गर्द टोले दाइश की यलगार में जहाँ इराक़ के शहर मूसिल के दीगर इल्मी और सफ़ाफ़ती मराकिज़ को सख़्त नुक़सान पहुंचा वहां मूसिल की लाइब्रेरी भी शदीद नुक़सान से दो चार हुई। 2015ई0 में दाइश ने इस लाइब्रेरी पर हम्ला कर के 100000 से ज़्यादा कीमती नुस्ख़ों को नज़रे आतिश कर दिया था जो सिर्फ़ इल्मी और अदबी नुस्खे थे और मज़हब से उनका कोई तअल्लुक नहीं था और लाइब्रेरी की इमारत को भी धमाकों के ज़रिये गिराने की कोशिश की। दाइशी अनासिर से मूसिल की आज़ादी के बाद अब धीरे धीरे उस शहर को अपनी अस्ली हालत में लाने की कोशिश की जा रही है। इस दौरान इराक़ी जवान मूसिल लाइब्रेरी को किताबें हदिया कर के उस इल्मी ख़ज़ाने को दोबारा बहाल करने की कोशिश में मसरूफ़े अमल हैं।

## ईरान की हिमायत से हमें दहशत गर्द तनज़ीमों पर फ़त्हा

### हासिल हुई: सै0 हसन नसरुल्लाह

अहलेबैत न्यूज़ एजेंसी अबना के मुताबिक़ हिज़्बुल्लाहे लबनान के सर बराह हुज्जतुल इस्लाम सै0 हसन नसरुल्लाह का कहना है कि सारी दुनिया जान ले कि हमें दहशत गर्द तनज़ीमों पर जिस वजह से कामयाबी हासिल हुई वह ईरान की हिमायत थी। हिज़्बुल्लाहे लबनान के सिक्रेटरी जनरल सै0 हसन नसरुल्लाह ने फ़त्हे इरसाल के मुताल्लिक़ गुप्तगू करते हुए फ़रमाया कि मैंने कहा था कि लबनान से अल सरा का सफ़ाया करने के बाद ख़िताब करूंगा। सबसे पहले मैं आज़ाद होकर वतन लौटने वालों को मुबारकबाद पेश करता हूँ। शोहदा के अहले ख़ाना को भी तबरीक़ और तसल्लियत पेश करता हूँ।

उन्होंने कहा कि अभी हमारे कुछ शोहदा की लाशें दाइश के कब्ज़े में हैं और कुछ अफ़राद ना पैद हैं जिनके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता कि शहीद हो गए या असीर बना लिये गए हैं। उनके लिये मैं जाती तौर पर कोशिश में मसरूफ़ हूँ।

उन्होंने कहा कि इस जंग में शामी अफ़वाज ने निहायत अहम किरदार निभाया है लेकिन अफ़सोस मीडिया ने शामी अफ़वाज को वह तवज्जो नहीं दी जिसकी वह हक़दार थी। हमारा अख़लाकी फ़रीज़ा है कि बशरुल असद और उनके असकरी हुक्काम का शुक्रिया अदा करें।

उन्होंने कहा कि हमने इरसाल और फ़लीते में ईरानी असलहों और ईरान के तजरेबात की बिना पर जंग लड़ी। सारी दुनिया जान ले कि हमने दहशत गर्द तनज़ीमों पर ईरान की भरपूर हिमायत के सबब फ़त्हा हासिल की।

उन्होंने कहा कि शाम और लबनान के कुछ इलाकों पर अब भी दहशत गर्द तनज़ीम दाइश का कब्ज़ा है जिसका इलाका 296 किलोमीटर के करीब है और उस इलाके को आज़ाद कराने के लिये लेबनानी फ़ौज को इक़दाम करना होगा।

### यज़ीदी आज भी सर काटते हैं और हुसैनी आज भी इस्लाम का दिफ़ाअ करते हुए सर कुरबान कर देते हैं

अहलेबैत न्यूज़ एजेंसी अबना की रिपोर्ट के मुताबिक़ इसलामी जमहूरिय-ए-ईरान की पार्लिमेंट के स्पीकर ने शहीद मोहसिन हिजजी की अलम नाक शहादत और अफ़ग़ानिस्तान में हालिया दहशत गर्दाना वाकिआत की तरफ़ इशारा करते हुए कहा है कि शाम, इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान में हुसैनियों और यज़ीदियों के दरमियान जंग जारी है और वहहाबी यज़ीदी दहशत गर्द शिकस्त के आख़िरी मराहिल में पहुंच गए हैं।

लारीजानी ने इराक़, शाम और अफ़ग़ानिस्तान में सर गर्म वहहाबी दहशत गर्दों को यज़ीदी मकतब का तरफ़दार करार देते हुए कहा कि शाम, इराक़ और अफ़ग़ानिस्तान में हुसैनियों और यज़ीदियों के दरमियान जंग जारी है। यज़ीद के तरफ़दार वहहाबी दहशत गर्द शिकस्त के आख़िरी मराहिल में दाख़िल हो गए हैं। लारीजानी ने शहीद मोहसिन हिजजी की दर्दनाक शहादत की तरफ़ इशारा करते हुए कहा कि शहीद मोहसिन हिजजी की तरबियत और परवरिश मकतबे हुसैनी में हुई थी और उन्होंने हरमे ज़ैनबी के दिफ़ाअ का पुख़्ता अज़्म कर रखा था और उनकी शहादत से अयां हो गया कि आज भी हुसैनियों और यज़ीदियों के दरमियान लड़ाई जारी है।